CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४१-२०

पुष्पदन्त-भूतबलि द्वारा प्रणीत

छक्खंडागम-लेहण-कधा

(षट्खण्डागम लेखन-कथा)

अर्थात्

जैन-शौरसेनी प्राकृतागम के लेखन की कथा

सम्पादन

डा. राजाराम जैन

4517

प्राच्य श्रमण भारती प्रकाशन समिति

गया (बिहार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५/२०
1114

पुष्पदन्त-भूतबलि द्वारा प्रणीत

छक्खंडागम-लेहण-कधा

[षट्खण्डागम लेखन-कथा]

अर्थात्

जैन-शौरसेनी प्राकृतागम के लेखन की कथा
[षट्खण्डागम-सूत्र की वीरसेन स्वामी द्वारा लिखित
धवला टीका के आधार पर]
मूलपाठ, शब्दार्थ, हिन्दी अनुवाद तथा विस्तृत टिप्पणियों के साथ

सम्प्रेरक
पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज

सम्पादन
डॉ० राजाराम जैन
भू० पू० यूनिवर्सिटी प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संस्कृत-प्राकृत विभाग, ह० दा० जैन कॉलेज,
आरा (बिहार) (मगध विश्वविद्यालय)

ग्रन्थ सं० 4517
दिनांक 8-8-99

प्राच्य श्रमण भारती प्रकाशन समिति
दि० जैन समाज गया-शाखा
गया (बिहार)
१९९१-९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक—
सम्पादक एवं नियामक
प्राच्य श्रमण भारती प्रकाशन समिति
महाजन टोली नं० २
आरा (बिहार)
८०२३०१

C/o दि० जैन समाज गया, शार
दि० जैन मन्दिर मार्ग
गया (बिहार)

प्रथम संस्करण–१००० प्रतियाँ,
१९९१-९२

मूल्य : १०-०० (केवल दस रुपये मात्र)

मुद्रक : रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स कमच्छा, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Chhakkhandāgama-Lehana-Kadhā
[ṢAṬKHAṆḌĀGAMA-LEKHANA-KATHĀ]

Written by Ācārya Puṣpadanta-Bhūtabali

[The Story of Composition of Jaina Śauraseni Scriptures]

Text with Hindi Translation, Critical Study, words-meaning and explanatory Notes.

Śampreraka

Rev. Upādhyāya Sri Jñana-Sāgarji Mahārāj

Edited by

Dr. Raja Ram Jain

University Prof. and Head of the P. G. Dept. of Saṃskrit & Prakrit, (Retd) H.D. Jain College, Arrah (Bihar) (Magadh University)

Published by

Prachya Sramaṇa Bharati Prakashan Samiti

Gaya D. Jain Samaj, Gaya (Bihar)

1991-92

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Published by the *General Editor*,

Prachya Sramaṇa Bharati Prakashan Samiti

Mahajan Toli No. 2
ARRAH (Bihar)
802301

Dig. Jain Samaj Gaya (Bihar)
C/o Dig. Jain Mandir,
Gaya (Bihar)

First Edition—1000 Copies
1991-92

Price :Rs. 10.00

Printed by—
Ratna Printing Works
B 21/42 A, Kamachha,
Varanasi-221 010.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रम

—भूमिका

- षट्खण्डागम सूत्र के विषय का स्रोत एवं परम्परा ७
- षट्खण्डागम-सूत्र की लेखन-कथा ७
- षट्खण्डागम-सूत्र का समकालीन ग्रन्थ—कसायपाहुड ८
- षट्खण्डागम सूत्र पर लिखित टीकाएँ ८
- षट्खण्डागम-सूत्र का नामकरण ९
- „ „ विषय-वर्गीकरण ९
- „ „ सर्वप्रथम प्रकाशन १०
- षट्खण्डागम-सूत्र पर लिखित एवं उपलब्ध टीका की विशेषताएँ १०
- षट्खण्डागम-सूत्र के लेखन के उपकरण १२
- षट्खण्डागम-सूत्र की भाषा १३
- कृतज्ञता-ज्ञापन १५

—The story of Composition and Publication of Jaina Śauraseni Scriptures. १७-२२

— छक्खंडागम लेहण कधा [षट्खण्डागम लेखन कथा]

- मूलपाठ २३
- शब्दार्थ २७
- हिन्दी अनुवाद ३७
- आवश्यक टिप्पणियाँ (अकारादि क्रम से) ४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

षट्खण्डागम सूत्र के विषय का स्रोत एवं परम्परा

शौरसेनी प्राकृतागम-साहित्य के इतिहास के अनुसार षट्खण्डागम लोकनायक तीर्थंकर महावीर के सर्वोदयी उपदेशों का मूल स्रोत है। उनके प्रथम गणधर (पट्टशिष्य) गौतम-गोत्रीय इन्द्रभूति, जो कि "गणधर गौतम" के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, उन्होंने द्वादशांग के रूप में महावीर-वाणी को निबद्ध किया।

भगवान महावीर के परिनिर्वाण के 683 वर्षों तक द्वादशांगों के ज्ञान की गुरु-शिष्य-परम्परा मौखिक रूप में चलती रही, किन्तु उसके बाद वह क्रमशः विलुप्त होती गई।

षट्खण्डागम सूत्र-लेखन-कथा

संयोग से द्वादशांग-वाणी के कुछ अंश का, कच्छ-काठियावाड़ (गुजरात) में स्थित गिरिनगर की चन्द्रगुफा में आत्मध्यान में संलग्न घोर महाव्रती आचार्य धरसेन (प्रथम सदी ईस्वी के आस-पास) को ज्ञान था। किन्तु ज्ञान की विलुप्तप्राय-स्थिति से वे चिन्तित हो उठे। अतः अपनी ज्ञान-परम्परा की सुरक्षा की दृष्टि से उन्होंने महिमा नाम की नगरी में आयोजित मुनि सम्मेलन को एक लेख-पत्र भेजकर उनसे कुछ सुयोग्य, चरित्रनिष्ठ तथा प्रतिभा-सम्पन्न शिष्यों को अपने पास (अर्थात् आचार्य धरसेन के पास) भेजे जाने की कामना व्यक्त की।

फलस्वरूप आन्ध्र-प्रदेश से दो साधक तपस्वी, जिनके नाम भूतबलि एवं पुष्पदन्त थे, आचार्य धरसेन के पास गिरिनगर पहुँचे। धरसेन ने उनकी परीक्षा लेने के बाद दृष्टिवाद के अन्तर्गत पूर्व-साहित्य तथा आचारांगसूत्र के कुछ अंशों का अध्ययन कराया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे चलकर इन्हीं भूतबलि एवं पुष्पदन्त ने "षट्खण्डागम" ग्रन्थ की सूत्र रूप में रचना की।

षट्खण्डागम का समकालीन ग्रन्थ 'कसायपाहुड'

उक्त आचार्य धरसेन के समय में ही एक दूसरे आचार्य भी हुए, जिनका नाम गुणधर था। उन्हें भी द्वादशांग-वाणी का ज्ञान कण्ठ-परम्परा से प्राप्त हुआ था। अतः उन्होंने "कसायपाहुड" (कषाय प्राभृत) नामक द्वितीय सिद्धान्त-ग्रन्थ की रचना की। उनकी परम्परा में होने वाले आर्यमंक्षु तथा आचार्य नागहस्ति ने उक्त "कसायपाहुड" का व्याख्यान किया तथा आचार्य यतिवृषभ ने इस ग्रन्थ पर चूर्णि-सूत्रों का प्रणयन किया।

षट्खण्डागम पर लिखित टीकाएँ

षट्खण्डागम के संक्षिप्त वर्ण्य-विषय पर विशद्-प्रकाश डालने हेतु विभिन्न कालों में अनेक सरल टीकाएँ लिखी गईं, जिनमें आचार्य कुन्दकुन्द कृत परिकर्म, शामकुण्ड कृत पद्धति-टीका, तुम्बुलुराचार्य कृत चूड़ामणि तथा आचार्य समन्तभद्र एवं वप्पदेव कृत टीकाओं के उल्लेख मिलते हैं किन्तु वे वर्त्तमान में अनुपलब्ध हैं।

षट्खण्डागम की सूत्र-शैली तथा विषय की जटिलता एवं दुरूहता को देखकर एक सर्वगम्य सुबोध टीका की आवश्यकता बनी ही रही। प्राकृत एवं प्राच्य-विद्या-जगत् आचार्य वीरसेन स्वामी का सदा ऋणी रहेगा, जिन्होंने समय की आवश्यकता का अनुभव किया तथा मनोयोग पूर्वक उक्त षट्खण्डागम पर वाटग्राम-नगर में बैठकर सन् 816 ई० में "धवला" नाम की टीका लिखी। वीरसेन के गुरु का नाम आर्यनन्दि तथा प्रधान शिष्य का नाम था आचार्य जिनसेन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षट्खण्डागम-सूत्र का नामकरण

आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि ने आचार्य धरसेन के पास विद्या ग्रहण करने के बाद जिस ग्रन्थ की रचना की, उसके यथार्थ नाम का पता नहीं चलता किन्तु आचार्य वीरसेन स्वामी ने उक्त ग्रन्थ का नाम "खण्ड सिद्धान्त" बतलाया है तथा उसे छह खण्डों वाला बतलाया है। चूँकि वह सिद्धान्तों का प्रतिपादक ग्रन्थ है, अतः उन्होंने उसे "षट्खण्डसिद्धान्त" भी कहा है। वीरसेन ने सिद्धान्त एवं आगम को पर्यायवाची माना है, अतः वह "षट्खण्डागम" के नाम से भी प्रसिद्ध हो गया है।

विषय-वर्गीकरण

षट्खण्डागम का प्रथम खण्ड 'जीवट्ठाण' (जीवस्थान) है, जिसके 8 अनुयोगद्वार-प्रकरणों तथा 9 चूलिकाओं में जीव की विविध स्थितियों का गम्भीर विवेचन किया गया है। द्वितीय खण्ड "खुद्दाबन्ध" (क्षुद्रकबन्ध) नाम का है, जिसके 11 अधिकारों में जीव के कर्मबन्ध पर विस्तृत विवेचन किया गया है। तीसरा खण्ड "बन्धस्वामित्व-विचय" है, जिसमें जीव के कर्म के साथ हुए बन्ध पर विशद् विवेचन किया गया है। चतुर्थ खण्ड "वेदना-खण्ड" के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें नाम, स्थापना, द्रव्य, गणना, ग्रन्थ, कारण और भाव रूप इन 7 कृतियों तथा वेदना-खण्ड में निक्षेप, नय आदि 16 अधिकारों में वेदना का वर्णन किया गया है। पाँचवें खण्ड का नाम "वर्गणा" है। इसमें 23 प्रकार की वर्गणाओं का वर्णन उपलब्ध है।

इन्द्रनन्दि कृत "श्रुतावतार" के अनुसार आचार्य पुष्पदन्त द्वारा रचित सूत्रों के साथ-साथ छह हजार सूत्रों की रचना आचार्य भूतबलि ने की। इसके अतिरिक्त भी भूतबलि ने छठवें खण्ड "महाबन्ध" की भी रचना की, जो 30 हजार श्लोक प्रमाण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस महाबन्ध में 'वंध-विधान' का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

सर्वप्रथम प्रकाशन

षट्खण्डागम के प्रथम पाँच खण्डों का धवला टीका के साथ सम्पादन-अनुवाद प्रो० (डॉ०) हीरालालजी जैन ने कुछ प्रकाण्ड विद्वानों के सहयोग से सन् 1934 के आसपास प्रारम्भ किया था और सन् 1939 से 1960 के मध्य वह 16 खण्डों में प्रकाशित हो चुका है। वर्त्तमान में उसका दूसरा संस्करण जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर से क्रमशः प्रकाशित हो रहा है।

छठवें खण्ड-महाबन्ध का महाधवला टीका के साथ सम्पादन एवं अनुवाद पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त-शास्त्री ने किया है, जो 7 खण्डों में भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली द्वारा प्रकाशित है।

आचार्य गुणधर कृत कसायपाहुड (कषायप्राभृत) का जयधवला टीका के साथ सम्पादन एवं अनुवाद पं० फूलचन्द्र जी सि० शा० एवं पं० कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने किया है, जो 15 खण्डों में भा० दि० जैन संघ, मथुरा द्वारा प्रकाशित है।

षट्खण्डागम सूत्र पर लिखित धवला टीका की विशेषताएं

पूर्वोक्त धवला टीका की यह विशेषता है कि वह आचार्य बप्पदेव गुरु की "व्याख्या-प्रज्ञप्ति" नाम की टीका के आधार पर, चूर्णियों की पद्धति वाली संस्कृत एवं प्राकृत-भाषा से मिश्रित है। इसीलिए वीरसेन ने उसे "मणिप्रवाल न्याय" से लिखित टीका कहा है। इस धवला टीका में 72 हजार श्लोक हैं।

आचार्य वीरसेन की धवला-टीका के सन्दर्भों को देखकर उनके पाण्डित्य का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। उन्होंने दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराओं के साहित्य का आलोडन-विलोडन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया था। सत्कर्म-प्राभृत, कषाय-प्राभृत, सन्मतिसूत्र, पंचत्थिपाहुड, तिलोयपण्णति, जीव-समास, छेदसूत्र जैसे महान् सैद्धान्तिक ग्रन्थों के उल्लेख इसके साक्षात् प्रमाण हैं। वर्तमान अर्धमागधी-आगमों के आचारांगसूत्र, बृहत्कल्पसूत्र, अनुयोगद्वार-सूत्र की भी अनेक गाथाएँ उसमें उद्धृत हैं।

पूर्वोक्त 'कसायपाहुड' का वर्ण्य-विषय भी संक्षिप्त होने के कारण बदलते युग-सन्दर्भों में वह जटिल एवं दुरूह होता गया। बहुत सम्भव है कि उस पर भी अनेक तपस्वी-साधकों ने सुबोध-टीकाएँ लिखी हों, किन्तु उनकी जानकारी के लिए हमारे पास कोई विशेष साधन नहीं है। सिद्धान्त प्रेमी मुमुक्षुओं एवं स्वाध्याय-शील भविक जनों के महान् कल्याणमित्र उक्त आचार्य वीरसेन ने उसे सर्वगम्य बनाने की दृष्टि से उस (कसाय पाहुड) पर भी "जयधवला" नामकी टीका लिखना प्रारम्भ किया। उन्होंने उस पर 20 हजार श्लोक लिखे भी। किन्तु दुर्भाग्य से उसी समय उनका स्वर्गवास हो गया। अतः उनके परम शिष्य आचार्य जिनसेन ने उस कार्य को आगे बढ़ाया तथा सन् 837 ई० में उसे लिखकर समाप्त किया।

उक्त जयधवला टीका में 60 हजार श्लोक हैं।

षट्खण्डागम का छठवाँ खण्ड "महाबन्ध" के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर आचार्य भूतबलि ने 40 हजार श्लोकों में जो टीका लिखी, वह "महाधवला" टीका के नाम से प्रसिद्ध है।

षट्खण्डागम का विषय द्रव्यानुयोग एवं करणानुयोग से सम्बन्धित है। साहित्य ही समाज का दर्पण है। इस साहित्य के विषय की गहनता तथा जटिलता को देखकर भी लगता है कि उस समय की जनता कितनी सुबुद्ध एवं प्रबुद्ध रही होगी, जिसकी आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए ही धरसेन, गुणधर, भूतबलि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं पुष्पदन्त जैसे महान् आचार्यों ने प्रथमानुयोग की रचना न कर द्रव्यानुयोग-साहित्य का प्रवचन एवं प्रणयन किया। क्योंकि प्रथमानुयोग साहित्य तो उस श्रेणी के लोगों के लिए लिखा जाता है, जो जडवुद्धि, अल्पबुद्धि या अल्पज्ञ होते हैं, तथा जो गम्भीर-सिद्धान्तों को गम्भीर-सिद्धान्तों की भाषा में नहीं समझ पाते, उन्हें ही रोचक कथा-कहानियों के माध्यम से उस विषय का ज्ञान कराना सम्भव होता है।

षट्खण्डागम सूत्र के लेखन के उपकरण

कल्पना कीजिए उस समय की, जब लेखनी (कलम) तथा लेखन-सामग्री (कागज, स्याही, कूट आदि) का प्रचलन नहीं हुआ था। उस समय छैनी हथौड़ी ही कलम, तथा पाषाण-शिलाएँ ही कागज या स्लेट का काम देती थीं। इसीलिए तो सम्राट अशोक के आदेश तथा खारबेल का जीवन-परिचय तथा उसके शासन-काल का इतिवृत्त पत्थरों पर ही अंकित मिलता है। यह लेखन-कार्य सभी के वश की वात नहीं थी, इसलिए पूर्वागत-ज्ञान को स्मृति के सहारे तथा गुरु-शिष्य-परम्परा से ही जीवित रखना अनिवार्य था। प्राचीन वैदिक-साहित्य तथा तीर्थंकरों की वाणी को उसी परम्परा से, वाणी-शुद्धि की दृष्टि से स्वरों एवं व्यंजनों के विशिष्ट उच्चारणों एवं अंग-संकेतों के आधार पर, जीवित रखा गया।

आगे चलकर लेखन-सामग्री की पुनः खोज की गई और उसमें वनस्पति के वरदान का लाभ उठाया गया। वृक्षों की छालों तथा ताड़पत्तों को रासायनिक क्रियाओं से सुयोग्य बनाकर तथा पत्तों के रस से विविध रंग बनाकर लोहे की कलम या लकड़ी की कलम से ग्रन्थों को लिखा जाने लगा। धीरे-धीरे 8वीं-9वीं सदी तक घरेलू कागज का आविष्कार भी कर लिया गया। अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

13वीं सदी तक ताड़पत्र तथा कागज दोनों के प्रयोगों के प्रमाण मिलते हैं किन्तु उसके बाद सुकर, सुगम एवं सर्वसुलभ होने के कारण केवल कागज के प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं। प्रारम्भ में यह कागज मोटा एवं खुरदुरा होता था, किन्तु उसमें भी क्रमशः विकास होते-होते आज तो उसने रंग, सफाई, चिकनेपन आदि की दृष्टि से आश्चर्यजनक रंग-रूप बदल लिए हैं।

पूर्वकाल में एक मूल-ग्रन्थ की प्रतिलिपियाँ कराने में अनेक कठिनाइयाँ होती थीं। अतः अनेक प्रतिलिपियाँ न हो पाने के कारण रख-रखाव के अभाव में या अन्य विषम अदृश्य कारणों से अनेक ग्रन्थ नष्ट हो गए। कागज-युग में एक ग्रन्थ की दर्जनों प्रतिलिपियाँ कर पाना तथा उन्हें महत्वपूर्ण केन्द्रों में सुरक्षित रख पाना सम्भव हो गया। इस कारण एक स्थान का साहित्य यदि नष्ट भी हो गया, तो भी उसकी अन्यत्र सुरक्षित प्रतिलिपियाँ सुरक्षित रह गईं।

षट्खण्डागम की मूल प्रतियाँ ताडपत्रों में अंकित थीं। इसीसे उनकी प्राचीनता के काल-निर्धारण में सहायता मिलती है। ये प्रतियाँ कर्नाटक के मूडबिद्री नामक स्थान में सुरक्षित थीं। इनकी उपलब्धि, सम्पादन एवं प्रकाशन कैसे सम्भव हो सका, इसकी कथा बहुत ही विस्तृत एवं रोचक है, जिसके वर्णन के लिए यहाँ स्थानाभाव है। फिर भी उसको झांकी इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रकाशित अंग्रेजी भूमिका से मिल सकती है।

षट्खण्डागम की भाषा

षट्खण्डागम सूत्र की भाषा शौरसेनी प्राकृत होने के कारण उसे "शौरसेनी प्राकृतागम" की संज्ञा भी प्राप्त है। उसकी शौरसेनी प्राकृत कुछ भौगोलिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण अपनी कुछ मौलिक विशेषताओं को लिए हुए है। वैयाकरणों एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्षण-शास्त्रियों ने शौरसेनी-प्राकृत के जैसे लक्षण बतलाए हैं, वे संस्कृत-नाटकों में ही कहीं-कहीं मिलते हैं, किन्तु उसका स्वतन्त्र साहित्य, वस्तुतः दिगम्बर जैन साहित्य में ही उपलब्ध होता है। उसकी सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त भी कुछ अन्य विशेषताओं के कारण जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० पिशल, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० ए० एन० उपाध्ये आदि ने उसे "जैन-शौरसेनी" प्राकृत की संज्ञा प्रदान की है।

षट्खण्डागम के अतिरिक्त आचार्य कुन्दकुन्द, बट्टेकर, शिवार्य, स्वामिकार्त्तिकेय, सिद्धान्तचक्रवर्त्ती आचार्य नेमिचन्द्र, वसुनन्दि आदि का साहित्य इसी जैन-शौरसेनी प्राकृत में उपलब्ध होता है। षट्खण्डागम में उपलब्ध जैन-शौरसेनी-प्राकृत की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार हैं :—

1. तकार के स्थान में दकार। यथा—

मति—मदि—115/355
यथाख्यात—जहक्खाद—128/379
इति—इदि—1/8
नरकगति—णिरयगदी—24/102

2. थकार के स्थान में हकार अथवा ढकार। यथा

यथा—जहा—3/133
यथाख्यात्—जहक्खाद—128/379
पृथिवी—पुढवी—81/324

3. भकार तथा धकार के स्थान में हकार। यथा—

प्रभृति—पहुडि 44/277
चतुर्विधः—चउव्विहो 49/282

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4. अर्धमागधी अथवा मागधी प्राकृत के समान रकार के स्थान में लकार तथा दकार के स्थान में रकार होता है। यथा—

औदारिक शरीर—ओरालिय सरीर 57/297

5. तीनों सकारों के स्थान में केवल दन्त्य सकार। यथा—

उपशमः—उवसमो 18/189
कषायः—कसाय 55/291

6. कर्त्ताकारक पुंल्लिग एक वचन में ओकार। यथा—

नमः—णमो 1/8
सप्तविधः—सत्तविहो 49/282

7. सप्तमी विभक्ति सूचक ए तथा म्हि प्रत्यय। यथा—

पृथिव्यां—पुढवीए 82/325
स्थाने—ठाणे 129/380
एकस्मिन्—एक्कम्हि 63/308
एकस्मिन्—एकम्मि 43/276

कृतज्ञता-ज्ञापन

अन्त में मैं प्रशममूर्ति उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज (गया-चातुर्मास १९९१) के प्रति अपने सविनय प्रणाम निवेदित करता हूँ, जिनकी प्रेरणा से यह पुस्तिका सूर्य-किरणें देख सकी है तथा गया के एक उत्साही कर्मठ नेता श्री स्वरूपचन्द्रजी पाटनी के सत्प्रयत्नों तथा गया की दि० जैन समाज के आर्थिक अनुदान से प्राच्य श्रमण भारती प्रकाशन समिति की ओर से वह प्रकाशनार्थ प्रेस में दी जा सकी। इन सभी के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं अपने उन विद्वान् मित्रों का भी स्मरण करना चाहता हूँ जिनकी एक अद्यावधि अछूते एवं उपेक्षित महत्वपूर्ण तथ्य के तत्काल प्रकाशन के प्रति व्यग्रता, सदिच्छा एवं सत्प्रेरणा से यह पुस्तक तैयार की गई। मूल कारण यह था कि अर्धमागधी आगम सहित्य के लेखन की कथा से तो सभी परिचित हो चुके हैं किन्तु शौरसेनी प्राकृतागमों के लेखन की कथा से हमारा छात्र-समुदाय प्रायः अनभिज्ञ जैसा ही रहता आया है। अतः मगध विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो० डॉ० राय अश्विनी कुमार तथा ह० दा० जैन कालेज आरा के वर्तमान कालीन स्नातकोत्तर संस्कृत-प्राकृत विभागाध्यक्ष प्रो० डॉ० चन्द्रदेव राय के विशेष अनुरोध तथा सुझावों के अनुसार इस पुस्तक को तैयार किया गया है। यह विषय कुछ दुरूह एवं जटिल होते हुए भी उसे अधिकाधिक सरल और सरस बनाने का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री का मूल स्रोत षट्खण्डागम की धवला-टीका का प्रथम भाग है। अतः उसके सम्पादक एवं प्रकाशकों के प्रति मैं अपना विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ।

१। १२/९१
महाजन टोली नं० २
आरा (बिहार)
८०२३०१

विनयावनत
राजाराम जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

THE STORY OF COMPOSITION AND PUBLICATION OF JAINA-SAURASENĪ SCRIPTURES

Īndrabhūti Gautama, the Chief disciple of the 24th and the last Tirthaṃkara Mahāvira (599-527 B.C.), was the first Gaṇadhara, who rendered the Dwādaśānga-vāṇi (knowledge of twelve canonical texts) of Mahāvira in Sutta-(a short of formulae in prose) form. The sutta-knowledge was preserved for centuries in the form of "Kaṇṭha—Paramparā (Oral transmission). Gradually with the elapse of time, the knowledge decayed due to oral-tradition and by the time of Ācārya Dharasena (C. 85 A.D.) it was preserved only partially. Hence, in order to preserve the remaining knowledge he transmitted "Pūrva-Sāhitya" (Pre-Mahāvira-Jaina-litt.) of Dṛṣṭivādāṅga (the twelfth Aṅga-Canonical-litt) and part of Vyākhyā-Prjnapti-Sutta—(the 5th Aṅga-canon) knowledge to his two trusted and intelligent disciples—Ācārya Puṣpadanta and Ācārya Bhūtabali. The two Ācāryas who were distinguished scholars, rendered the knowledge received into 6000 Suttas in between 85-135 A.D. which were originally known as 'Khaṇḍa-Siddhānta' or Ṣaṭkhaṇḍa-Siddhānta or Paramāgama or Āgama-Siddhānta and finally as Ṣaṭkhaṇḍāgama.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ācārya Padmanandin or kundakunda (C. 1st Century B.C.) Ācārya Samantabhadra (2nd Century A.D.) Ācārya Śāmakuṇḍa (3rd Century, Tumbulura (4th Century A.D.) and Ācārya Bappadeva (6th to 8th Century A.D.) wrote vast Commentaries in about 5 Lacs ślokas (Verses) in different languages intelligible to common people but these commentaries were either destroyed or are unavailable due to some unfortunate and unknown reasons.

In the above chain of commentators the last was Vīrasena Swāmī, who wrote commetary on Ṣaṭ-Khaṇḍāgama known as "Dhawalā" which contains 72,000 ślokas (Verses). Today, only this commentary is available and is published. The commentary was named "Dhawalā" probably because the writing work was finished on Kārtika Triyodaśī (Wednesday) of Dhawala-Pakṣa (Moonlitfortnight) in the year 737 V.S. (680 A.D.) According to other version Vīrasena Swāmī named his commentary as Dhawalā on being highly impressed with the devotion of Rāṣṭrakūṭa King Amoghavarṣa I who had the title of "Atiśaya-Dhavalā",

Guṇadhara (C. 38 A.D.) was another Ācārya of the time, who was almost senior contemporary of Ācārya Dharasena. He possessed

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

partial knowledge of Dwādaśāṅga-Vāṇi. In order to preserve it he wrote on Āgama-Grantha (Text) named "Kaṣāya-Pāhuḍa" in Sutta-form, which was propagated by his disciple Ācārya Āryamaṅkṣu and Nāgahastin. Ācārya Yativṛṣabha wrote Cuṇṇi-Sutta (Commentary and explanatory notes in prose-style). Vīrasena-Swāmī also started writing Commentary on this Āgama-Grantha, but, he expired after writing only 20,000 ślokas. After his death his disciple Ācārya Jinasena II completed this commentary in the year 837 A.D. by writing further 40,000 ślokas. This commentary is known as "Jai-Dhawalā".

Thus the above mentioned and Ṣaṭ-Khaṇḍāgama and Kaṣāya-Pāhuḍa are said to be the original and authentic canonical literature of the Digambara Jaina Sect.

The Ṣaṭ-Khaṇḍāgamas here have divided into 6 Parts from subject matter point of view—(1) Jīvaṭṭhāṇa (2) Khuddabandha. (3) Bandha-Swāmitwa-Vicaya (4) Vedanā (5) Vargaṇā, and (6) Mahābandha.

The Ācāryas (Scholar-Saint) who acquired a thorough and comprehensive knowledge of all the 6 Khaṇḍas (Parts) was conferred the distinction of "Siddhānta-Cakravartin". Among

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

the Jainācāryas (Jaina-Saint-Scholars) it was Ācārya Nemicandra (The teacher of Chief-Commander Vira Cāmuṇḍarāya) who got this distinctive credit. He has very ably and in a simple and lucid style presented the whole substance of Ṣaṭ-Khaṇḍāgama in his work-Gommaṭasāra [in Chapters-Jivakāṇḍa and Karmakāṇḍa]. Similarly, those who got mastery over the first three Khaṇḍas (Parts) of S. K. were distinguished as Traividya-Deva. Ācārya Māḍhavacandra is a reputed Scholar of this category.

The two valuable Āgama-Granthas (S. K. and K. P.) of Digambara Jaina would either have rotted in the old Śāstra-Bhaṇḍāras (Store-rooms) or eaten by moths, had reverend persons like Prof. Dr. Hīrā Lāl Jaina, Siddhāntācarya Paṇḍita Phūla Candra Śāstrī and Paṇḍita Hīrā Lāla Śāstrī not dedicated their whole lives in showing these, the light of the day by their Herculean efforts made in text-compilation, editing and getting these published. They were very much helped by Vyākhyāna—Vācaspati Pt. Devakīnandana Śāstrī and Prof. Dr. A. N. Upādhye in the beginning.

The respectable Bhaṭṭārakas (Chief of the Jaina Monastery) of Mūḍabidre (Karnataka State, India) deserve all praise who valued the

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

original Palm-Leaf copies of the Āgama-texts (of S.K. and K.P.) more than their lives and treasured them for Centuries. They were, however, not in favour of making these texts public, but some devoted and affluent persons like Setha Māṇikacandra J. P. of Bombay, Setha Pannā Lāla Jaina of Amaraoti (M. P.) etc. made up their mind to get these published at any cost. With the inspiration and help of these affluent persons, scholars like Pt. Gajapati Upādhayāya, Mrs. Pt. Luxmībāi, Pt. Sītārām Śāstrī, Pt. Lokanātha Śāstrī etc. deeply and devotedly studied the ancient Palm-Leaf mss. of S. K. with Dhawalā and Jai-Dhawalā Commentaries written in old Kannaḍa-Script and prepared some copies in Devanāgarī-Script keeping themselves confined in solitory room in undisclosed place for years together facing all sorts of difficulties. With these base-materials and with the financial assistance of Srīmanta Setha Sitābrāi Laxmīcandra Jain of Vidiśa (M. P.), three scholars, viz. Prof. Dr. H. L. Jaina, Pt. Phūla Candra Śāstrī, and Pt. H. L. Śāstrī started editing and translating S. K. with Dhawalā Commentary in 1936 A.D. and by the year 1959 they got 5 parts (Khaṇḍas) of it published in 16 volumes. The editing and translation-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

work of Mahābandha, the 6th part (Khaṇḍa) of S. K. was taken up by respectable Pt. Phūla Candra Śāstrī, who has till now got 7 volumes published and is almost completing the 8th and the last volume of it.

The editing and translation-work of K P. (with Mahā-Dhawalā Commentary) was completed by Pt. Phūla Candra Śāstrī along with Pt. Kailāśa Candra Śāstrī which has been Published in 15 Volumes.

The learned scholars have completed the work of editing and translating these valuable texts in such a devoted and dedicated manner that history will ever remember them as "Saraswatī-Putra" (distinguished sons of Goddess of Learning).

The S. K. Literature is undoubtedly of high degree from the point of view of spiritualism and Philosophy of life. At the same time, it is a precious treasure of Indian classics from the point of view of History, Culture, Literature, Philosophy, Philology, language and style. It is high time to popularise this literature among the people for study, teaching and comparative research.

Raja Ram Jain
University Prof. and Head of the
P.G. Dept. of Sanskrit and Prakrit
H. D. Jain College, ARRAH
Bihar (Magadh University).

1st Feb. 1990
Mahajan Toli No. 2,
ARRAH (Bihar)
802301

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सं. 4517

छक्खंडागम-लेहण-कधा.

[षट्खण्डागम-लेखन-कथा]

1. तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह-विणासणट्ठमुवगय-वड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो।

उत्तं च—

> गोत्तेण गोदमो विप्पो चाउव्वेय-सडंगवि।
> णामेण इंदभूदि त्ति सीलवं बम्हणुत्तमो ॥ (1)

2. पुणो तेणिंदभूदिणा भाव-सुद-पज्जय-परिणदेण बारहंगाणं चोद्दस-पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भाव-सुदस्स अत्थ-पदाणं च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्वसुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गंथ-रयणा जादेत्ति।

3. तेण वि गोदमेण दुविहमवि सुदणाणं लोहज्जस्स संचारिदं। तेण वि जंबूसामिस्स संचारिदं। परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयल-सुद-धारया भणिया। अपरिवाडिए पुण सयल-सुद-पारगा संखेज्जसहस्सा।

4. गोदमथेरो लोहज्जाइरियो जंबूसामो य एदे तिण्णि वि सत्त-विह-लद्धिसंपण्णा सयल-सुय-सायर पारया होऊण केवलणाणमुप्पाइय णिव्वुइं पत्ता। तदो विण्हू णंदिमित्तो अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे पुरिसोली-कमेण पंच वि चोद्दसपुव्व-हरा।

5. तदो विसाहाइरियो पोट्ठिलो खत्तियो जयाइरियो णागाइरियो सिद्धत्थथेरो धिदिसेणो विजयाइरियो बुद्धिल्लो गंगदेवो धम्मसेणो त्ति एदे पुरिसोली-कमेण एक्कारस वि आइरिया एक्का-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रसण्हमंगाणं उप्पायपुव्वादि-दसण्हं पुव्वाणं च पारया जादा, सेसुवरिम-चदुण्हं पुव्वाणमेग-देस-धरा य।

6. तदो णक्खत्ताइरियो जयपालो पांडुसामी धुवसेणो कंसाइरियो त्ति एदे पुरिसोलो-कमेण पंच वि आइरिया एक्कारसंग-धारया जादा, चोद्दसण्हं पुव्वाणमेगदेस-धरा य। तदो सुभद्दो जसभद्दो जसबाहू लोहज्जो त्ति एदे चत्तारि वि आइरिया आयारंग-धरा सेसंग-पुव्वाणमेग-देस-धरा य। तदो सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेग-देसो आइरिय-परंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो।

7. तेण वि सोरट्ठ-विसय-गिरिणयर-पट्टण-चंदगुहा-ठिएण अट्ठंगमहाणिमित्त-पारएण गंथ-वोच्छेदो होहिदि त्ति जाद-भएण पवयण-वच्छलेण दक्खिणावहाइरियाणं महिमाए मिलियाणं लेहो पेसिदो।

8. लेह-ट्ठिय-धरसेणाइरिय-वयणमवधारिय तेहि वि आइरिएहि बे साहू गहण-धारण-समत्थ धवलामल-बहु-विह-विणय-विहूसियंगा सील-माला-हरा गुरु-पेसणासणतित्ता देस-कुल-जाइ-सुद्धा सयल-कला-पारया तिक्खुत्तावुच्छियाइरिया अंधविसय-वेण्णायडादो पेसिदा।

9. तेसु आगच्छमाणेसु रयणीए पच्छिमभाए कुंदेंदु-संखवण्णा सव्व-लक्खण-संपुण्णा अप्पणो कय-तिप्पदाहिणा पाएसु णिसुढिय-पदियंगा बे वसहा सुमिणंतरेण धरसेण-भडारएण दिट्ठा। एवंविह-सुमिणं दट्ठूण तुट्ठेण धरसेणाइरिएण "जयउ सुय देवदा" त्ति संलवियं।

10. तद्दिवसे चेय ते दो वि जणा संपत्ता धरसेणाइरियं। तदो धरसेण-भयवदो किदियम्मं काऊण दोण्णि दिवसे बोलाविय तदिय-दिवसे विणएण धरसेण-भडारओ तेहिं विण्णत्तो "अणेण कज्जेणम्हा दो वि जणा तुम्हं पादमूलमुगवया" त्ति। "सुट्ठु भद्दं" ति भणिऊण धरसेण-भडारएण दो वि आसासिदा। तदो चिंतिदं भयवदा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेलघण-भग्गघड-अहि-चालणि-महिसा वि-जाहय-सुएहि
मट्टिय-मसय-समाणं वक्खाणइ जो सुदं मोहा ॥ (2)
दढ-गारव-पडिबद्धो विसयामिस-विस-वसेण घुम्मंतो ।
सो भट्ट-बोहि-लाहो भमइ चिरं भव-वणे मूढो ॥ (3)

11. इदि वयणादो जहाछंदाईणं विज्जा-दाणं संसार-भय-वद्धणमिदि चिंतेऊण सुहसुमिण-दंसणेणेव अवगय-पुरिसंतरेण धरसेण-भयवदा पुणरवि ताणं परिक्खा काउमाढत्ता "सुपरिक्खा हियय-णिव्बुइ करेति"। तदो ताणं तेण दो विज्जाओ दिण्णाओ। तत्थ एया अहियक्खरा, अवरा विहीणक्खरा। एदाओ छट्ठोववासेण साहेहु त्ति।

12. तदो ते सिद्धविज्जा विज्जा-देवदाओ पेच्छंति, एया उद्दंतुरिया अवरे य काणिया। एसो देवदाणं सहावो ण होदि त्ति चिंतेऊण मंत-व्वायरण-सत्थ-कुसलेहिं हीणाहियक्खराणं छुहणा-वणयण-विहाणं काऊण पढंतेहि दो वि देवदाओ सहाव-रूवट्ठियाओ दिट्ठाओ।

13. पुणो तेहि धरसेण-भयवंतस्स जहावित्तेण विणएण णिवेदिदे सुट्ठु तुट्ठेण धरसेण-भडारएण सोम्म-तिहि-णक्खत्त-वारे गंथो पारद्धो।

14. पुणो कमेण वक्खाणंतेण तेण आसाढ-मास-सुक्क-पक्ख एक्कारसीए पुव्वण्हे गंथो समाणिदो। विणएण गंथो समाणिदो त्ति तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्स महदी पूजा पुप्फ-बलि-संख-तूर-रव-संकुला कदा। तं दट्ठूण तस्स "भूदबलि" त्ति भडारएण णामं कयं। अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थ-वियत्थ-ट्ठिय-दंत-पंतिमोसारिय भूदेहि समीकय-दंतस्स "पुप्फयंतो" त्ति णामं कयं।

15. पुणो ते तद्दिवसे चेव पेसिदा संता "गुरु-वयणमलंघणिज्जं" इदि चिंतिऊणागदेहि अंकुलेसरे वरिसा-कालो कओ। जोगं समाणोय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिणवालियं दट्ठूण पुप्फयंताइरियो वणवासि-विसयं गदो । भूदबलि-भडारओ वि दमिल-विसयं गदो ।

16. तदो पुप्फयंताइरिएण जिणवालिदस्स दिक्खं दाऊण विसदि-सुत्ताणि करिय पढाविय पुणो सो भूदबलि-भयवंतस्स पासं पेसिदो । भूदबलि-भयवदा जिणवालिद-पासे दिट्ठ-विसदि-सुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगय-जिणवालिदेण महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण-बुद्धिणा पुणो दव्व-पमाणाणुगममादिं काऊण गंथ-रचणा कदा । तदो एयं खंड-सिद्धंतं पडुच्च भूदबलि-पुप्फयंताइरिया वि कत्तारो उच्चंति ।

17. तदो मूल-तंत-कत्ता वड्ढमाण-भडारओ, अणुतंत-कत्ता गोदम-सामी, उवतंतकत्तारा भूदबलि-पुप्फयंतादयो वीय-राय-दोस-मोहा मुणिवरा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षट्खण्डागम-लेखन-कथा.

शब्दार्थ

1. तेण = उन। महावीरेण = महावीर के द्वारा। केवलणा-णिणा = केवलज्ञान से। कहिदत्थो = कहे गये अर्थ को। तम्हि = उसीमें। चेव = ही। काले = काल में। तत्थेव = उसी। खेत्ते = क्षेत्र में। खयोवसम = क्षयोपशम। जणिद = जनित। चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण = चार प्रकार के निर्मल ज्ञान से सम्पन्न। गोदम-गोतेण = गौतम-गोत्री। सयलदुस्सुदि = सम्पूर्ण दुःश्रुति में। पारएण = पारंगत। जीवाजीव = जोव-अजोव। विषय-संदेह = विषयक संदेह को। विणासणट्ठमुवगयवड्ढमाण = विणासणट्ठं + उवगय + वड्ढ-माण = विनाश के लिए, उपस्थित हुए वर्धमान के। पादमूले = पादमूल में। इंदभूदिणावहारिदो = इंदभूदिणा + अवहारिदो = इन्द्रभूति ने अवधारण किया। उत्तं च = उक्तं च = कहा भी गया है।

गोत्तेण-गोदमो = गौतमगोत्री। विप्पो = विप्र वर्ण वाले। चाउव्वेय = चारों वेद। सडंगवि = षडंगविद्या का पारगामी। णामेण = नाम से। इंदभूदि = वर्धमान स्वामी का प्रथम गणधर-इन्द्रभूति। त्ति = ऐसा। सीलवं = शीलवान्। बम्हणुत्तमो + ब्राह्मणों में श्रेष्ठ।

2. पुणो = अनन्तर। तेणिंदभूदिणा = उस इन्द्रभूति ने। भाव-सुद = भाव-श्रुत रूप। पज्जय = पर्याय से। परिणदेण = परिणत। बारहंगाणं = आचारांग आदि बारह प्रकार के अंग। चोद्दस = चौदह प्रकार के। पुव्वाण = पूर्वरूप। च = और। गंथाणमेक्केण = ग्रन्थों की एक ही। चेव = ही। मुहुत्तेण = मुहुर्त में। कमेण = क्रम से। रचणा कदा = रचना की। तदो = अतः (उस कारण से) भाव-सुदस्स = भाव श्रुत। अत्थ पदाणं = अर्थ-पदों के। च = और। तित्थयरों = तीर्थंकर हैं। कत्ता = कर्त्ता। तित्थयरादो = तीर्थंकर के निमितसे। सुद-पज्जाएण = श्रुत पर्याय से। गोदमो = गौतम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणधर। परिणदो = परिणत हुए। त्ति = इसलिए। दव्वसुदस्स = द्रव्य-श्रुत के। गोदमो = गौतम गणधर हैं। कत्ता = कर्त्ता। तत्तो = इस तरह। गंथरचणा = ग्रंथरचना। जादेत्ति = हुई।

3. तेण = उन। वि = भी। गोदमेण = गौतम गणधर ने। दुविहमवि = दोनों ही प्रकार से। सुदणाणं = श्रुतज्ञान। लोहज्जस = आचार्य लोहार्य को। संचारिदं = दिया। तेण वि = उन आचार्य (लोहार्य) ने भी। जंबूसामिस्स = जम्बूस्वामी को। संचारिदं = दिया। परिवाडिमस्सिदूण = परिपाटि-क्रम से प्रदान करके। एदे = ये। तिण्णि वि = तीनों हीं। सयलसुद-धारया = सकल श्रुत के धारण करने वाले। भणिया = कहे गये हैं। अपरिवाडिए = परिपाटी-क्रम की अपेक्षा न की जाय। पुण = यदि। सयल-सुद = सकल श्रुत के। पारगा = पारगंत हुए, धारी हुए। संखेज्ज सहस्सा = संख्यात हजार।

4. गोदमथेरो = गौतम स्थविर। लोहज्जाइरियो = लोहाचार्य। जंबूसामी = जम्बूस्वामी। य = और। एदे = ये। तिण्णि = तीनों। वि = भी। सत्त विह = सात प्रकार की। लद्धि-संपण्णा = ऋद्धियों से युक्त। सयल-सुय = सकल श्रुत रूपी। सायर = सागर के। पारया = पारगामी। होऊण = होकर। केवलणाणं = केवलज्ञान को। उप्पापइय = उत्पन्न कर। णिव्वुइं = निर्वाण को। पत्ता = प्राप्त हुए। तदो = इसके बाद। विण्हू = विष्णु। णंदिमित्तो = नन्दिमित्र। अवराइदो = अपराजित। गोवद्धणो = गोवर्द्धन। भद्दबाहु = भद्रबाहु। त्ति = इस प्रकार। एदे = ये। पुरिसोलो = (महापुरुष) आचार्य। कमेण = क्रम से। पंच वि = पाँचों ही। चोद्दस = चौदह। पुव्व-हरा = पूर्व के धारी हुए।

5. तदो = तदन्तर। विसाहाइरियो = विशाखाचार्य। पोट्ठिलो = प्रोष्ठिल। खत्तियो = क्षत्रिय। जयाइरियो = जयाचार्य। णागाइ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रियो = नागाचार्य। सिद्धत्थथेरो = सिद्धार्थ स्थविर धिदिसेणो = धृतिसेन। विजयाइरियो = विजयाचार्य। बुद्धिले = बुद्धिल्ल। गंगदेवो = गंगदेव। धम्मसेणो = धर्मसेन। त्ति = इस प्रकार। ऐदे = ये। पुरिसोली = महापुरुष। कमेण = परिपाटो क्रम से। एक्कारसण्हमंगाणं = ग्यारह अंगों की। आइरिया = आचार्य। एक्कारसण्हमंगाणं = ग्यारह अंग और। उप्पाय-पुव्वदि = उत्पाद-पूर्व आदि। दसण्हं पुव्वाणं = दश पूर्वों के। च = और। पारया जादा = धारक हुए तथा। सेसुवरिय = शेष उपरिम। चदुण्हं = चार।

पुव्वाणमेगदेसधरा = पूर्वों के एक देश के धारक हुए। च = और।

6. तदो = इसके बाद। णक्खताइरियो = नक्षत्राचार्य। जयपालो = जयपाल। पांडुसामी = पाण्डुस्वामो, धुवसेणो = ध्रुवसेन, कंसाइरियो = कंसाचार्य। ति = इस प्रकार। एदे = ये। पुरिसोलीकमेण = (महापुरुष) आचार्य परिपाटी-क्रम से। पंच वि = पाँचों ही। आइरिया = आचार्य। एक्कारसगंधारया = ग्यारह अंगों के धारी। जादा = हुए। चोद्दसण्हं = चौदह। पुव्वाणमेगदेसधरा य = पूर्वों के एक देश-धारक। तदो = तदन्तर। सुभद्दो = सुभद्र। जसभद्दो = यशोभद्र। जसबाहु = यशोबाहू। लोहज्जो = लोहार्य। त्ति = इस प्रकार। एदे = ये। चतारि = चारों। वि = ही। आइरिया = आचार्य। आयारंग = आचारांग के। धरा = धारक। सेसंगे = शेष अंग। पुव्वाणमेगदेसधरा = पूर्वों के एक देश के धारक हुए। य = और। तदो = इसके बाद। सव्वेसिमंग = सभी अंग। पुव्वाणमेगदेसो = पूर्वों का एक देश। आइरिय = आचार्य। एरंपराए = परम्परा से। आगच्छमाणो = आता हुआ। धरसेणाइरियं = धरसेन आचार्य को। संपत्तो = प्राप्त हुआ।

7. तेण = उसने। वि = भी। सोरट्ठ = सौराष्ट्र। विषय = देश के। गिरि-णयर = गिरि नगर। पट्टण = पत्तन, नगर। चंदगुहा =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रगुफा में। ठिएण = रहने वाले। अट्ठंगमहाणिमित्तपारएण = अष्टांग महानिमित्त के पारगामी। गंथ = ग्रन्थ का। वोच्छेदो = विच्छेद = हो जायेगा। त्ति = इस प्रकार। जादभएण = उत्पन्न हो गया है भय जिसको। पवयण = प्रवचन। वच्छलेण = वत्सल। दक्खिणावहाइरियाणे = दक्षिणापथ के आचार्यों के। महिमाए मिलियाणं = महामहिमा अर्थात् महिमा नगरी के पंचवर्षीय साधु-सम्मेलन में सम्मिलित हुए। लेहो पेसिदो = एक लेख-पत्र भेजा।

8. लेहट्ठिय = लेख में लिखे गये। धरसेणाइरिय = धरसेनाचार्य के। वयणं अवधारिय = वचनों को धारण कर। तेहिं = उन्होंने। वि = भी। आइरिएहिं = आचार्यों ने। बे-साहू = दोनों साधु। गहण = ग्रहण। धारण-समत्था = धारण करने में समर्थ। धवलामल = उज्ज्वल और निर्मल। बहुविह = नाना प्रकार का। विनय = विनय से। विहूसियंगा = विभूषित अंग वाले। सील-माला = शील माला के। हरा = धारक। गुरु = गुरुओं द्वारा। पेसणासण = प्रेषण (भेजने) रूपी भोजन से। तित्ता = तृप्त हुए। देस-कुल = देश, कुल। जाइसुद्धा = जाति से शुद्ध। सयल = समस्त। कला-पारया = कलाओं में पारंगत। तिक्खुत्तावुच्छियारिया = तीन बार पूछा है आचार्यों से। अंधविषय = आन्ध्र देश में। वेण्णायडादो = वेणा नदी के तट से। पेसिदा = भेजा।

9. तेसु आगच्छमाणेसु = उनके आने पर। रयणीए = रात्रि में। पच्छिमभाए = पिछले भाग में। कुंदेंदु-संखवण्णा—कुन्दके पुष्प, चन्द्रमा तथा शंख के समान धवल वर्ण वाले। सव्व-संपुण्णा = समस्त लक्षणों से परिपूर्ण। अप्पणो कयतिप्पदाहिणा = जिन्होंने आचार्य धरसेन की तीन प्रदक्षिणाएँ दी है। पाएसु = पैरों में। निसुढिय = पड़ गए हैं। पदियंगा = चरणों में अंग। बे = दोनों। वसहा = वृषभ, श्रेष्ठ बैल। सुमिणंतरेण = स्वप्न में। धरसेण—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भडारएण = धरसेन भट्टारक ने। दिट्ठा = देखा। एवंविह = इस प्रकार के। सुमिणं = स्वप्न को। दट्ठूण = देखकर। तुट्ठेण = सन्तुष्ट होकर। धरसेणाइरिएण = धरसेन आचार्य ने। जयउ सुय-देवदा = श्रुतदेवता जयवन्त रहे। त्ति = इस प्रकार। संलवियं = कहा।

10. तद्दिवसे चेय = उसी दिन से। ते = वे। दो वि = दोनों ही। जणा = जन। संपत्ता = आए। धरसेणाइरियं = धरसेन आचार्य के। तदो = बाद में। धरसेण भयवदो = धरसेन भगवान् (आचार्य)। किदियम्मं = कृतिकर्म, पादवन्दना। काऊण = करके। दोण्णि दिवसे = दो दिन। बोलाविय = व्यतीत करके। तदिय दिवसे = तीसरे दिन। विणएण = विनय पूर्वक। तेहि – उन दोनों ने। विण्णत्तो = विनय पूर्वक कहा। अणेण कज्जेण = इस कार्य से। अम्हा = हम। दो वि = दोनों ही। पादमूलमुवगया = आपके पादमूल में उपस्थित हुए है। सुट्ठु भद्दं = अच्छा है, कल्याण हो। भणिऊण = कहकर। आसासिदा = आश्वासन दिया। चिंतियं = विचार किया। भयवदा = भगवान् धरसेन आचार्य ने। सेलघण = शैलघन = अर्थात् मेघ-वर्षा, जिस प्रकार मेघ-वर्षा भी पाषाण को सुकुमार नहीं बना पाती, उसी प्रकार पत्थर के समान हृदय वाले श्रोताओं को धर्मामृत के लगातार सिंचन से भी कोमल-हृदय नहीं बनाया जा सकता। भग्गघड = भग्नघट। जिस प्रकार फूटे घड़े में जल नहीं ठहरता, उसी प्रकार मूर्ख श्रोता उपदेशों को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है। अहि = सर्प। जिस प्रकार मधुर दुग्धपान करके भी सर्प जहर ही उगलता है, उसी प्रकार दुष्ट श्रोता भी सुन्दर उपदेश सुनकर भी विषवमन ही किया करते हैं। चालणि = चालनी। जिस प्रकार चालनी योग्य-पदार्थ को नीचे गिरा देती है और अयोग्य पदार्थों को ऊपर रख लेती है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी प्रकार मूल्यवान् उपदेश सुनकर भी मूर्ख श्रोता उसे अनसुना कर सारहीन तत्व को ही धारण करते हैं। महिसा = भैंसा, जिस प्रकार भैंसा तालाब से जल कम पीता है और बारबार डुबकी लगाकर उसे गन्दा अधिक कर देता है, उसी प्रकार मूर्ख श्रोता सभा भवन में उपदेश तो कम सुनते है किन्तु अवसर पाकर उसे क्षुब्ध अधिक कर देते हैं। अवि = मेष अर्थात् मेंढा, जिस प्रकार मेंढा अपने मालिक को ही मारने दौड़ता है, उसी प्रकार मूर्ख श्रोता उपदेशक की ही निन्दा करता रहता है और अवसर मिलने पर प्रहार करने को भी तैयार रहता है। जाहक = जोंक, जिस प्रकार खून चूसने वाली जोंक स्तन से दुग्धपान न करके केवल खून ही चूसती है, उसी प्रकार जो मूर्ख श्रोता उत्तम गुरु या आचार्य से उत्तम शिक्षा ग्रहण न कर केवल अधम तत्व ही ग्रहण करते हैं। सुए = शुक, तोता। जिस प्रकार तोते को सिखाने पर वह सीख तो जाता है, पर उसको याद कर लेने के बाद भी वह उसके सार तत्व को अपने गले के नीचे नहीं उतार पाता। ऐसे श्रोता को शुक-समान श्रोता कहा जाता है। मट्टिय = मिट्टी। जिस प्रकार पानी में सानकर सूखी मिट्टी गीली होकर तथा सूखने पर पुनः कड़ी हो जाती है, उसी प्रकार जो गुरु का उपदेश सुनने तक तो कोमल परिणामी रहता है तथा बाद में पुनः कठोर परिणामी बन जाता है, ऐसा श्रोता मिट्टी के समान श्रोता कहलाता है। मसय = मशक अर्थात् मच्छर। जिस प्रकार मच्छर पहले तो कानों में भिनभिनाता है तथा अवसर आने पर कहीं भी काट लेता है, उसी प्रकार जो श्रोता पहले तो उपदेशक की प्रशंसा करते हैं तथा बाद में अवसर पाते ही उसकी निन्दाकर उसकी जड़ें खोदना प्रारम्भ कर देते हैं, ऐसा श्रोता मशक के समान श्रोता कहलाता है। उक्त कोटि के सभी श्रोता अयोग्य माने गए हैं। इन्हें उपदेश देना व्यर्थ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

11. इदि वयणादो = इस प्रकार के कथन से। जहाछंदाईणं = स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करने वाले (श्रोताओं को)। विज्जादाणं = विद्यादान। संसार-भय-वद्धणं इव = संसार और भय का बढाने वाला। इदि चिंतेऊण = ऐसा चिन्तनकर। सुह-सुमिण-दंसणेण एव = शुभ-स्वप्न के देखने मात्र से ही। अवगय-पुरिसंतरेण = (उन) आए हुए दोनों साधुओं के अन्तर को (अर्थात् विशेषता को जान लिया था)। पुणरवि = फिर, दूसरी बार भी। ताणं परिक्खा काउं आढत्ता = उन दोनों की परीक्षा लेना प्रारम्भ किया। सुपरिक्खा = उत्तम परीक्षा, जाँच। हियय णिव्वुइ करेति = हृदय में सन्तोष उत्पन्न करती है। तदो = तत्पश्चात्। ताणं = उन दोनों को। तेण = उन आचार्य धरसेन ने। दो विज्जाओ दिण्णाओ = दो विद्याएँ प्रदान की। तत्थ = उनमें से। एया = एक। अहियक्खरा = अधिक अक्षर (वर्ण) वाली थी। अवरा = दूसरी। विहीण-अक्खरा = हीन अक्षर (वर्ण) वाली थी। एदाओ = इन दोनों को छट्ठोववासेण साहेहु = षष्ठभक्त उपवास अर्थात् दो दिन के उपवास पूर्वक सिद्ध करो।

12. सिद्ध विज्जा = (जब उन्हें) विद्याएँ सिद्ध हो गईं। विज्जा-देवदाओ पेच्छंति = विद्या की अधिष्ठात्री देवियों को देखा। एया = एक। उद्दंतुरिया = देवी के दाँत बाहर निकले हुए हैं। अवरे य = और दूसरी देवी। काणिया = कानी है। ऐसो देवदाणं सहावो ण होदि = ऐसा अर्थात् विकृत अंग वाला होना तो देवताओं का स्वभाव नहीं होता। चिंतेऊण = विचार कर। मंत-व्वायरण-सत्थ-कुसलेहिं = मन्त्र सम्बन्धी व्याकरण-शास्त्र में कुशल उन दोनों ने। हीणाहियक्खराणं छुहणावणयण-विहाणं काऊण = हीन अक्षर (वर्ण) वाली विद्या (मन्त्र) में अधिक अक्षर वर्ण मिलाकर तथा अधिक अक्षर वाली विद्या (मन्त्र) में से अक्षर (वर्ण) निकालकर विद्या (मन्त्र) को। पढंतेहिं = पढते, सिद्ध करते हुए। दो वि =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों ही। देवदाओ = देवता। सहाव-रूव-ट्ठियाओ = अपने स्वभाव तथा अपने सुन्दर रूप में स्थित। दिट्ठाओ = दिखलाई पड़ो।

13. पुणो = पुनः, तत्पश्चात्। तेहि = उन दोनों जनों (शिष्यों) ने। धरसेण भयवंतस्स = भगवान (आचार्य) धरसेन के। जहा-वित्तेण विणएण णिवेदिदे = (योग्य विनयपूर्वक उन दोनों के विद्या-सिद्धि सम्बन्धी) समस्त वृत्तान्त के निवेदन करने पर। सुट्ठु तुट्ठेण = बहुत अच्छा, इस प्रकार सन्तुष्ट हुए। धरसेन भडारएण = धरसेन भट्टारक (आचार्य) ने। सोम्म तिहि = शुभ तिथि। णक्खत्त = नक्षत्र। वारे = दिन में। गंथो पारद्धो = ग्रन्थ (का पढ़ाना) प्रारम्भ कर दिया। पुणो कमेण = पुनः क्रम से। वक्खाणंतेण = व्याख्यान करते हुए। तेण = उन दोनों ने (धरसेन आचार्य से)। आसाढ-मास-सुक्क-पक्ख-एक्कारसीए-पुव्वण्हे = आषाढ़ मास के शुक्ल-पक्ष की एकादशी के पूर्वाण्हकाल में। गंथो समाणिदो = ग्रन्थ (का अध्ययन) समाप्त किया।

14. विणएण गंथो समाणिदो = विनय पूर्वक (इन दोनों शिष्यों ने) ग्रन्थ (का अध्ययन) समाप्त किया है। त्ति = इस प्रकार। तुट्ठेहिं भूदेहिं = सन्तुष्ट हुए भूत जाति के व्यन्तर-देवों ने। तत्थ एयस्स = इन दोनों शिष्यों में से एक की। मददो पूजा = महती, बहुत बड़ी पूजा। पुप्फ-वलि-संख-तूर-रव-संकुला = पुष्प, तीन वर्ष पुराने जौ, चढ़ाकर तथा शंख एवं तूर्य जाति के बाजे बजाकर सस्वर नाद पूर्वक। कदा = की। तं दट्ठूण = ऐसी पूजा देखकर। भडारएण = आचार्य धरसेन ने। तस्स = उस (एक शिष्य) का नाम "भूतवलि"। णामं कयं = नाम घोषित कर दिया। अवरस्स वि = दूसरे (शिष्य) का भी भूदेहि पूजितस्स = भूत-जाति के व्यन्तर-देवों द्वारा जिनकी पूजा की गई, उसका अत्थ-वियत्थ-ट्ठिय-दंत-पंतिमो-सारिय = अस्त-व्यस्त दन्त-पंक्ति को दूर करके। भूदेहि = भूत जाति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के व्यन्तर देवों द्वारा। समीकय दंतस्स = (मोती के समान) एक सुडौल दाँत वाला बनाकर। पुप्फयंत = पुष्पदन्त। णामं कयं = नाम से घोषित किया।

15. पुणो = तत्पश्चात्। ते = वे दानों। तद्दिवसे चेव = उसी दिन। पेसिदा संता = भेजे जाने पर। गुरुवयणमलंघणिज्जं = गुरु के वचन (आज्ञा) अलंघनीय होते हैं। इति चिंतिऊण आगदेहिं ऐसा विचार कर आते हुए। अंकलेसरे = अंकुलेश्वर (गुजरात) में। वरिसा-कालो कओ = वर्षाकाल (चातुर्मास) बिताया। जोगं समाणीय = वर्षायोग (वर्षाकाल) को समाप्त कर। जिणवालियं दट्ठूण जिनपालित को देखकर। पुप्फयंताइरियो = पुष्पदन्त आचार्य = वणवासि-विसयं = वनवासि (कर्णाटक) देश को चले गए। भूदबलि भडारओ वि = भूतबलि भट्टारक (आचार्य) भी। दमिल-विसयं = द्रमिल (तमिल) देश को चले गए।

16. तदो = तत्पश्चात्। पुप्फयंताइरिएण = आचार्य पुष्पदन्त ने। जिणवालिदस्स दिक्खं दाऊण = जिनपालित के लिए दोक्षा देकर। विसदि सुत्ताणि करिय पढाविय = बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणा के सूत्रों का निर्माण कर और उन्हें जिनपालित को पढाकर बाद में उसे आचार्य भूतबलि के पास (तमिलदेश) भेज दिया। भूदबलिभयवदा = आचार्य भूतबलि ने। जिणवालिद पासे = जिनपालित के पास में। दिट्ठ-विसदि-सुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगय-जिणवालिदेण = बीस प्ररूपणान्तर्गत सत्प्ररूपणा के सूत्र देखे हैं और आचार्य पुष्पदन्त की आयु अल्प हो बची है, यह तथ्य जिन्होंने जिनपालित से जान लिया है। महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स व उच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण बुद्धिणा = (अतएव) महाकर्म-प्रकृतिप्राभृत का विच्छेद हो जायगा, इस प्रकार की बुद्धि (जानकारी) उत्पन्न होते हो। पुणो = पुनः। दव्व-पमाणाणुगममादिं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काऊण = (आचार्य भूतबलि ने) द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर। गंथ-रचणा कदा = ग्रन्थ-रचना की। तदो = इसलिए। एयं खंड-सिद्धंतं पडुच्च = इस "खण्ड-सिद्धान्त" (षट्खण्डागमसूत्र) की अपेक्षा। भूदबलि-पुप्फयंताइरिया वि कत्तारो उच्चंति = भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुत के कर्ता कहे जाते हैं।

17. तदो = इस प्रकार। मूल-तंत-कत्ता वड्ढमाण-भडारओ = मूलग्रन्थ-कर्ता वर्धमान भट्टारक (तीर्थंकर) हैं। अणुतंत-कत्ता गोदम-सामी = अनुग्रन्थ कर्ता गौतम स्वामी हैं। उवतंत-कत्तारा भूदबलि-पुप्फयंतादयो वीय-राय-दोस-मोहा मुणिवरा = उपग्रन्थकर्त्ता राग, द्वेष और मोह से रहित भूतबलि-पुष्पदन्त आदि अनेक आचार्य हैं।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षट्खण्डागम-लेखन-कथा

हिन्दी अनुवाद

1. इस प्रकार भगवान् महावीर अर्थ-कर्त्ता हैं। इस प्रकार केवलज्ञान से विभूषित उन भगवान् महावीर के द्वारा कहे गये अर्थ को, उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न हुए चार प्रकार के निर्मल ज्ञान से युक्त, वर्ण से ब्राह्मण, गौतमगोत्री, संपूर्ण दुःश्रुति में पारंगत, और जीव-अजीवविषयक संदेह को दूर करने के लिये श्री वर्द्धमान के पादमूल में उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूति ने अवधारण किया। कहा भी गया है—

गौतमगोत्री, विप्रवर्णी, चारों वेद और षडंगविद्याका पारगामी, शीलवान् और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ऐसा वर्द्धमानस्वामी का प्रथम गणधर इन्द्रभूति इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। (1)

2. इसके बाद भावश्रुतरूप पर्याय से परिणत उस इन्द्रभूति ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रन्थों को एक ही मुहुर्त में क्रम से रचना की। अतः भावश्रुत और अर्थ-पदों के कर्त्ता तीर्थंकर हैं। तथा तीर्थंकर के निमित्त से गौतम गणधर श्रुतपर्याय से परिणत हुए। इसलिये द्रव्यश्रुत के कर्त्ता गौतम गणधर हैं इसतरह गौतम गणधर से ग्रन्थरचना हुई।

3. उन गौतम गणधर ने भी दोनों प्रकार का श्रुतज्ञान लोहार्य को दिया। लोहार्य ने भी जम्बूस्वामी को दिया। परिपाटी-क्रम से ये तीनों ही सकलश्रुत के धारण करनेवाले कहे गये हैं। और यदि परिपाटी-क्रम की अपेक्षा न की जाय तो उस समय संख्यात हजार सकलश्रुत के धारी हुए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4. गौतमस्थविर, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों ही सात प्रकार की ऋद्धियों से युक्त और सकल-श्रुतरूपी सागर के पारगामी होकर अन्त में केवलज्ञान को उत्पन्न कर निर्वाण को प्राप्त हुए। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन, और भद्रबाहु ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी-क्रम से चौदह पूर्व के धारी हुए।

5. तदनन्तर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थस्थविर, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह ही महापुरुष परिपाटी-क्रम से ग्यारह अंग और उत्पादपूर्व आदि दश पूर्वों के धारक तथा शेष उपरिम चार पूर्वों के एकदेश के धारक हुए।

6. इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी-क्रम से संपूर्ण ग्यारह अंगों के और चौदह पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारों ही आचार्य संपूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंग तथा पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। इसके बाद सभी अंग और पूर्वों का एकदेश आचार्य-परंपरा से आता हुआ धरसेन आचार्य को प्राप्त हुआ।

7. सौराष्ट्र (गुजरात-काठियावाड़) देश के गिरिनगर नाम के नगर की चन्द्रगुफा में रहनेवाले, अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचन-वत्सल और "आगे अंग-श्रुतका विच्छेद हो जायगा", इसप्रकार उत्पन्न हो गया है भय जिनको, ऐसे उन धरसेनाचार्य ने महामहिमा अर्थात् पंचवर्षीय साधु-सम्मेलन में संमिलित हुए दक्षिणापथ के (दक्षिणदेश के निवासी) आचार्यों के पास एक लेख-पत्र भेजा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

8. लेख में लिखे गये धरसेनाचार्य के वचनों को भलीभांति समझकर उन आचार्यों ने शास्त्र के अर्थ को ग्रहण और धारण करने में समर्थ, नाना प्रकार की उज्वल और निर्मल विनय से विभूषित अंगवाले, शीलरूपी माला के धारक, गुरुओं द्वारा प्रेषण (भेजने) रूपी भोजन से तृप्त हुए, देश, कुल और जाति से शुद्ध, अर्थात् उत्तम देश, उत्तम कुल और उत्तम जाति में उत्पन्न हुए, समस्त कलाओं में पारंगत, और तीन बार पूछा है आचार्यों से जिन्होंने, (अर्थात् आचार्यों से तीन बार आज्ञा लेकर) ऐसे दो साधुओं को आन्ध्र-देश में बहनेवाली वेणानदी के तट से भेजा।

9. मार्ग में उन दोनों साधुओं के आते समय, जो कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान सफेद वर्णवाले हैं, जो समस्त लक्षणों से परिपूर्ण हैं, जिन्होंने आचार्य (धरसेन) की तीन प्रदक्षिणा की है और जिनके अंग नम्रित होकर आचार्य के चरणों में पड़ गये हैं, ऐसे दो वैलों को धरसेन भट्टारक ने रात्रि के पिछले भाग में स्वप्न में देखा। इस प्रकार के स्वप्न को देखकर संतुष्ट हुए धरसेनाचार्य ने "श्रुतदेवता जयवन्त हो" ऐसे वाक्य का उच्चारण किया।

10. उसी दिन दक्षिणापथ से भेजे हुए वे दोनों साधु धरसेनाचार्य को प्राप्त हुए। उसके बाद धरसेनाचार्य की पादवन्दना आदि कृतिकर्म करके और दो दिन बिताकर तीसरे दिन उन दोनों ने धरसेनाचार्य से निवेदन किया कि "इस कार्य से हम दोनों आपके पादमूल को प्राप्त हुए हैं। "उन दोनों साधुओं के इस प्रकार निवेदन करने पर "अच्छा है, कल्याण हो", इस प्रकार कह कर धरसेन भट्टारक ने उन दोनों साधुओं को आश्वासन दिया। इसके बाद भगवान् धरसेन ने विचार किया कि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शैलघन, भग्नघट, अहि (सर्प), चालनी, महिष, अवि (मेंढ़ा), जाहक (जोंक), शुक, माटी और मशक के समान श्रोताओं को जो मोह से श्रुतका व्याख्यान करता है, वह मूढ़ दृढ़ रूप से ऋद्धि आदि तीनों प्रकार के गारवों के आधीन होकर विषयों की लोलुपतारूपी विष के वश से मूच्छित हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति से भ्रष्ट होकर भव-वन में चिरकालतक परिभ्रमण करता है। (2-3)

11. इस वचन के अनुसार "यथाछन्द अर्थात् स्वच्छन्दता-पूर्वक आचरण करनेवाले श्रोताओं को विद्या देना संसार और भयका ही बढ़ानेवाला है", ऐसा विचार कर, शुभ-स्वप्न के देखने मात्र से ही यद्यपि धरसेन भट्टारक ने उन आये हुए दोनों साधुओं के अन्तर अर्थात् विशेषता को जान लिया था, तो भी फिर से उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया, क्योंकि उत्तम प्रकार से ली गई परीक्षा हृदय में संतोष को उत्पन्न करती है। इसके बाद धरसेनाचार्य ने उन दोनों साधुओं को दो विद्याएँ दीं। उनमें से एक अधिक अक्षरवाली थी और दूसरी हीन अक्षरवाली थी। दोनों को दो विद्याएँ देकर उन्होंने कहा कि इनको षष्ठभक्त उपवास अर्थात् दो दिनके उपवास से सिद्ध करो।

12. इसके बाद जब उनको विद्याएँ सिद्ध हुईं, तो उन्होंने विद्या की अधिष्ठात्री देवताओं को देखा कि एक देवी के दाँत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है। "विकृतांग होना देवताओं का स्वभाव नहीं होता" इस प्रकार उन दोनों ने विचारकर मन्त्र-सम्बन्धी व्याकरण-शास्त्र में कुशल उन दोनों ने हीन अक्षरवाली विद्या में अधिक अक्षर मिलाकर और अधिक अक्षरवाली विद्या में से अक्षर निकालकर मन्त्र को पढ़ना अर्थात् फिर से सिद्ध करना प्रारम्भ किया। जिससे वे दोनों विद्या-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवताएँ अपने स्वभाव और अपने सुन्दर रूप में स्थित दिखलाई पड़ीं।

13. तदनन्तर भगवान् धरसेन के समक्ष, योग्य विनय-सहित उन दोनों के विद्यासिद्धि सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त के निवेदन करने पर "बहुत अच्छा" इस प्रकार संतुष्ट हुए धरसेन भट्टारक ने शुभ तिथि, शुभनक्षत्र और शुभवार में ग्रन्थ का पढ़ाना प्रारम्भ किया।

14. इस तरह क्रम से व्याख्यान करते हुए धरसेन भगवान् से उन दोनों ने आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष को एकादशी के पूर्वाण्हकाल में ग्रन्थ समाप्त किया। विनयपूर्वक ग्रन्थ समाप्त किया, इसलिए संतुष्ट हुए भूत जाति के व्यन्तर देवों ने उन दोनों में से एक को पुष्प, पुराने जौ तथा शंख और तूर्य जाति के वाद्यविशेष के नाद से व्याप्त बड़ी भारी पूजा की। उसे देखकर धरसेन भट्टारक ने उनका "भूतबलि" यह नाम रक्खा, तथा जिनकी भूतों ने पूजा की है, और अस्त-व्यस्त दन्तपंक्ति को दूर करके भूतों ने जिनके दाँत समान कर दिये हैं, ऐसे दूसरे का भी धरसेन भट्टारक ने "पुष्पदन्त" नाम रखा।

15. तदनन्तर उसी दिन वहाँ से भेजे गये उन दोनों ने "गुरु के वचन अर्थात् गुरु की आज्ञा अलंघनीय होती है" ऐसा विचार कर आते हुए अंकलेश्वर (गुजरात) में वर्षाकाल बिताया। वर्षायोग को समाप्त कर और जिनपालितको देखकर (उसके साथ) पुष्पदन्त आचार्य तो वनवासि-देशको चले गये और भूतबलि भट्टारक तमिल-देश को चले गये।

16. तदनन्तर पुष्पदन्त आचार्य ने जिनपालित को दीक्षा देकर, बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणा के सूत्र बनाकर और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनपालित को पढ़ाकर बाद में उन्हें भूतबलि-आचार्य के पास भेजा। तदनन्तर जिन्होंने जिनपालित के पास बीस प्ररूपणान्तर्गत सत्प्ररूपणा के सूत्र देखे हैं और "पुष्पदन्त आचार्य अल्पायु हैं", इसप्रकार जिन्होंने जिनपालित से जान लिया है, अतएव महाकर्म-प्रकृतिप्राभृत का विच्छेद हो जायगा, इस प्रकार उत्पन्न हुई है बुद्धि जिनको, ऐसे भगवान् भूतबलि ने द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर ग्रन्थ-रचना की। इसलिये इस खण्डसिद्धान्त की अपेक्षा भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुत के कर्त्ता कहे जाते हैं।

17. इसतरह मूलग्रन्थकर्ता वर्द्धमान भट्टारक हैं, अनुग्रन्थ-कर्ता गौतमस्वामी हैं और उपग्रन्थकर्ता राग, द्वेष और मोह से रहित भूतबलि, पुष्पदन्त आदि अनेक आचार्य हैं।

——

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षट्खण्डागम-लेखन-कथा

आवश्यक टिप्पणियाँ

(अकारादि क्रम से)

1. अंकुलेश्वर—

यह नगर गुजरात प्रान्त के भड़ौच जिले में स्थित था। इसकी पहिचान वर्तमान कालीन अंकलेश्वर से की जाती है। आजकल यह स्थल प्राकृतिक गैस एवं तेल के लिए सुप्रसिद्ध केन्द्रों में माना जाता है। आचार्य भूतबलि एवं पुष्पदन्त ने गिरिनगर से लौटकर यहीं पर अपना चातुर्मास किया था। प्रतीत होता है कि ईसा की प्रथम शती के आसपास यह श्रमण-विद्या का प्रधान केन्द्र रहा होगा।

2. अंध-विषय = आन्ध्र देश—दक्षिण भारत का एक प्रान्त

3. अंगधर (अंगधारी)—

द्वादश अंगों को धारण करने वाला। जैन-परम्परा में अंग (आगम)-साहित्य को महावीर की वाणी माना गया है। वह बारह प्रकार का है—(1) आचारांग, (2) सूत्रकृतांग, (3) स्थानांग, (4) समवायांग, (5) व्याख्याप्रज्ञरिक्त-अंग, (6) ज्ञातृकथांग, (7) उपासक-दशांग, (8) अन्तःकृद्दशांग, (9) अनुत्तरौपपातिक-दशांग, (10) प्रश्नव्याकरणांग, (11) विपाकसूत्रांग एवं (12) दृष्टि-वादांग। ये सभी अंग-ग्रन्थ अर्धमागधी-प्राकृत-भाषा निबद्ध है। श्वेताम्बर जैन वर्तमान में उपलब्ध प्रथम 11 अंगों को प्रामाणिक एवं अन्तिम अंग को लुप्त मानते हैं, जबकि दिगम्बर जैन, केवल अन्तिम अंग को प्रामाणिक एवं प्रथम 11 अंगों को लुप्त मानते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त साहित्य द्वादशांग-वाणी के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें तीर्थंकरों की वाणी का संकलन रहता है। यह वाणी, जिन्हें आद्योपान्त यथार्थरूप में कण्ठस्थ रहती है तथा जिन्हें उनका निर्दोष अर्थ भी स्पष्ट रहता है, उन्हें अंगधर या अंगधारी कहा जाता है। जैन-परम्परा में भ० महावीर के निर्वाण के बाद की अंगधारियों की परम्परा इस प्रकार है :—

आचार्य नाम	कितने अंगों के धारी	काल	साक्ष्य
(1) विशाखाचार्य	11 अंगधारी एवं 10 पूर्वधारी	ई.पू. 365-355	श्रुतावतार (इन्द्रनन्दि-कृत)
(2) प्रोष्ठिल–	,,	,, 355-336	,,
(3) क्षत्रिय–	,,	,, 336-319	,,
(4) जयसेन (प्रथम)	,,	,, 319-298	,,
(5) नागसेन–	,,	,, 298-280	,,
(6) सिद्धार्थ–	,,	,, 280-263	,,
(7) धृतिसेण–	,,	,, 263-245	,,
(8) विजयसेन–	,,	,, 245-232	,,
(9) बुद्धिलिंग (या बुद्धिल)	,,	,, 232-212	,,
(10) मंगदेव या देव	,,	,, 212-198	,,
(11) धर्मसेन–	,,	,, 198-182	,,
(12) नक्षत्र–	केवल 11 अंगधारी	,, 182-164	,,
(13) जयपाल (अपर-नाम यशपाल अथवा जसफल)	,,	,, 164-144	,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(14) पाण्डव–	11 अंगधारी	,,	144-105	,,
(15) ध्रुवसेन (या द्रुमसेन)	,,	,,	105-91	,,
(16) कंसाचार्य–	,,	,,	91-59	,,
(17) सुभद्र	10 अंगधारी	,,	59-53	,,
(18) यशोभद्र (प्रथम) अथवा भद्र या अभय	,,	,,	53-35	,,
(19) भद्रबाहु (द्वितीय) अथवा यशोबाहु	8 अंगधारी	,,	35-12	,,
(20) लोहाचार्य या लोहार्य	,,	,,	12-से सन् 38 ई०	,,

4. अट्ठंगणिमित्त (अष्टांग निमित्त)—

आठ महानिमित्तों में कुशलता प्राप्त करना अष्टांग महानिमित्त-ज्ञता कहलाती है। तिलोयपण्णत्ति के अनुसार अष्टांग निमित्तज्ञान इस प्रकार है :—

(1) अन्तरिक्ष निमित्तज्ञान—ग्रह-उपग्रह देखकर भावी सुख-दुःख का ज्ञान।

(2) भौम—पृथिवी के घन, सुषिर आदि गुणों का विचार कर ताँबा, लोहा आदि धातुओं की हानि-वृद्धि तथा दिशा-विदिशा को देखकर और अन्तराल में स्थित चतुरंग-बल को देखकर जय-पराजय को जानना।

(3) अंग—मनुष्यों एवं तिर्यंचों के 'अंगोपांगों के दर्शन एवं स्पर्श से वात, पित्त एवं कफ रूप तीन प्रकृतियों एवं सप्तसाधुओं को देखकर तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले सुख-दुःख या मरणादि को जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(4) स्वर—मनुष्यों एवं तिर्यंचों के विचित्र शब्दों को सुनकर त्रिकाल में होने वाले दुःखों-सुखों को जानना।

(5) व्यंजन—सिर, मुख एवं कन्धे आदि के तिल एवं मस्से आदि को देखकर तीनों कालों के सुखों-दुःखों को जानना।

(6) लक्षण—हाथ-पैर के नीचे की रेखाएँ तथा तिल आदि देखकर तीनों काल सम्बन्धी सुखों-दुःखों को जानना।

(7) चिह्न या छिन्न—देव, दानव, राक्षस, मनुष्य और तिर्यंचों के द्वारा छेदे गये शस्त्र, वस्त्र तथा प्रासाद, नगर और देशादि चिह्नों को देखकर तीनों काल-सम्बन्धी शुभ, अशुभ, मरण तथा सुख-दुःख आदि को जानना।

(8) स्वप्न—वात-पित्तादि दोषों से रहित व्यक्ति सुप्तावस्था में रात्रि के अन्तिम प्रहर में अपने मुख में प्रविष्ट चन्द्र, सूर्य के दर्शन रूप शुभ स्वप्न एवं घृत, तैल की मालिश, ऊंट, गधे आदि की सवारी या परदेश-गमन रूप अशुभ स्वप्न देखकर तीनों कालों के सुख-दुःख को बतलाने का ज्ञान।

5. अणुतंतकत्ता = अनुग्रन्थकर्ता (गौतम गणधर)

6. अत्थ-पद = अर्थ-पद

जितने पदों के द्वारा अर्थ-ज्ञान होता है वह अर्थ-पद कहलाता है। जैसे—"अग्नि को लाओ" ये दो पद मिलाकर संकेत-विशेष के अर्थ का ज्ञान कराते हैं।

7. अप्पाउअ = अल्प आयु वाला

8. अर्थकर्ता = ग्रन्थकर्ता

श्रमण परम्परा के अनुसार तीर्थंकर देव 18 (अठारह) प्रकार की महाभाषाएँ तथा 700 (सात सौ) प्रकार की क्षुद्र भाषाओं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अथवा प्रादेशिक बोलियों) रूप बीज-पदों के द्वारा द्वादशांग वाणी का उपदेश दिया करते हैं। इसीलिए तीर्थंकरों को अर्थकर्त्ता कहा गया है।

इसी प्रकार गणधर देव (तीर्थंकर का पट्ट शिष्य) उक्त बीज-पदों के अर्थ का विश्लेषण या व्याख्या करते हैं। इसीलिए इन्हें ग्रन्थकर्ता कहा गया है।

9. अवराइदो = अपराजित नाम के आचार्य

श्रुतावतार के अनुसार भ० महावीर के बाद तीसरे श्रुतकेवली थे। इनका समय ई० पू० 434 से ई० पू० 412 माना गया है।

10. आचार्य पुष्पदन्त—

वीरसेन स्वामी ने इनके स्मरण-प्रसंग में लिखा है :—

पणमामि पुप्फयंतं दुकयंतं दुण्णयंधयार रविं।
भग्ग विसमग्ग कंटयमिसि समिइवई सया दंते (5)

अर्थात् जो दुष्कृतों (पापों) का अन्त करने वाले हैं, जो कुनय (दुर्नीति) रूपी अन्धकार को सूर्य के समान नष्ट करने वाले हैं, जिन्होंने मोक्ष-मार्ग के कंटकों (मिथ्या उपदेशादि प्रतिबन्धक कारणों) को भग्न कर दिया है, जो समिति (सभा) के अधिपति हैं और जो निरन्तर ही पञ्चेन्द्रियों का दमन करने वाले हैं, ऐसे आचार्य पुष्पदन्त को मैं (वीरसेन स्वामी) प्रणाम करता हूँ।

11. उवतंतकत्ता—उपग्रन्थकर्ता—(भूतबलि-पुष्पदन्त)

12. ऋद्धियाँ—

ऋद्धि वह विद्या है, जिससे जीवन में चमत्कारी सफलता मिलती है। "अमरकोश" के अनुसार वे आठ प्रकार की होती हैं :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धय: ।।

(1) अणिमा—जो शरीर को अणु के बराबर करने की सिद्धि प्राप्त करावे।

(2) महिमा—जो शरीर को सुमेरु के बराबर करने की सिद्धि प्राप्त करावे।

(3) गरिमा—जो शरीर को बज्र से अधिक गुरु बनाने की सिद्धि प्राप्त करावे।

(4) लघिमा—जो शरीर को वायु से भी हल्का कराने की सिद्धि प्राप्त करावे।

(5) प्राप्ति—भूमि पर स्थित रहकर जो अङ्गुलि के अग्रभाग से सूर्य, चन्द्र मेरु-शिखर आदि अन्य वस्तुओं को प्राप्त करावे।

(6) प्राकाम्य—इस ऋद्धि के प्रभाव से जीव जल पर पृथिवी पर चलने के समान चल सकता है।

(7) ईशित्व—जो समस्त जगत पर प्रभुत्व दिलावे।

(8) वशित्व—जो समस्त जीव-समूह को वश में करावे।

13. **एगदेसधरा** = एकदेश धारी, आंशिक ज्ञान के ज्ञाता।

14. **कंसाइरियो** = कंसाचार्य

शौरसेनी प्राकृतागमों के उद्धारक के रूप में इनका नाम अविस्मरणीय है। सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ "श्रुतावतार" के अनुसार ये आचारांग आदि 11 अङ्गों के धारक पाँचवें आचार्य के रूप में विख्यात हैं। इनका समय ई० पू० 91 से ई० पू० 59 तक माना गया है।

करणानुयोग—वह साहित्य जिसमें स्वर्ग, नरक भूगोल, खगोल आदि विषयों का वर्णन रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

15. **कत्ता = कर्ता = प्रणेता**

16. **कय तिप्पदाहिणा = तीन बार प्रदक्षिणा करके**

17. **कृतिकर्म—**

जिनेन्द्र देव, सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय की वन्दना करते समय आत्मलीन होना, उनकी प्रदक्षिणा करना, 3-3 बार नमस्कार करना, 4-4 बार शिर झुकाकर प्रणाम करना तथा 12 बार आवर्त्त करना। ये सभी क्रियाएँ कृतिकर्म कहलाती हैं।

18. **केवलणाणी = केवलज्ञानी—**

तत्वार्थसूत्र के अनुसार मोहनीय कर्म के क्षय से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्म के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि जीवन्मुक्त योगियों का एक निर्विकल्पक अतीन्द्रिय अतिशय ज्ञान है, जो कि बिना इच्छा तथा बुद्धि के प्रयोग की सर्वांग, सर्वकाल, तथा क्षेत्र सम्बन्धी समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् टंकोत्कीर्ण प्रत्यक्ष देखता है। इस केवलज्ञान का धारी ही केवलज्ञानी कहलाता है। इसे सर्वज्ञ अर्थात् समस्त संसार के समस्त पदार्थों को जानने वाला भी कहते हैं।

19. **खंड सिद्धंत = षट्खण्डागम-सूत्र।**

20. **खत्तियो = क्षत्रीय**

21. **खयोवसम—क्षय + उपशम = क्षयोपशम**

यह आत्मा के पाँच प्रकार के भावों में से तीसरा भाव माना गया है। यह वह भाव है, जिसके उत्पन्न होने में कर्म का क्षयोपशम निमित्त कारण होता है। अर्थात्, जिस प्रकार जल में से कुछ मैल के निकल जाने पर और कुछ मैल के बच जाने पर उस जल में कुछ निर्मलपना तथा कुछ गन्दगी रहने से जल की पूर्ण शुद्धि नहीं हो

४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाती, उसी प्रकार आत्मा में लगे हुये कुछ कर्मों के क्षय और कुछ कर्मों के उपशम होने पर जो भाव प्रकट होते हैं, उसे ही क्षायोपशमिक भाव माना जाता है।

22. गंगदेवो = गंगदेव आचार्य

श्रुतावतार के अनुसार इन आचार्य का दूसरा नाम 'देव' भी था। ये श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) के बाद दशवें आचार्य थे, जो 11वें अङ्ग एवं पूर्वधारी थे। इनका समय ई० पू० 212 से 198 तक माना गया है।

23. गणधर—

इसकी परिभाषा में कहा गया है :—

सयल गण पउम रविणो विविहड्ढि विराइआ विणिस्संगा।
णीराया वि कुराया गणहर देवा पसीयंतु ॥ (3)

अर्थात् जो सभी प्रकार के साधु-साध्वियों, श्रावक तथा श्राविकाओं के गण (संघ) रूपी कमलों के लिये सूर्य के समान हैं, जो बल, बुद्धि आदि विविध प्रकार की ऋद्धियों से युक्त होने पर भी अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग परिग्रह से रहित हैं और जो वीतरागी होने पर भी समस्त भू-मण्डल के हितैषी हैं, ऐसे गणधर देव मुझ पर प्रसन्न होवें।

24. गिरिणयर पट्टण—

गुजरात के सौराष्ट्र प्रक्षेत्र में स्थित एक ऐतिहासिक नगर। जैनधर्म की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण जैन तीर्थ है क्योंकि यहाँ से 22वें तीर्थंकर को निर्वाण लाभ हुआ था। अर्धमागधी आगम साहित्य के उत्तराध्ययन-सूत्र में वर्णित रहणेमिपवज्जा से सम्बन्धित घटना इसी पर्वत-शिखर की उपत्यका में घटित हुई थी। राजुल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुफा उसका अविस्मरणीय स्मारक के रूप में दृष्टव्य है। सम्राट अशोक के प्राकृत शिलालेख भी यहीं उपलब्ध हुए हैं, जो भारतीय इतिहास के निर्माण के लिये मूल-स्रोत के रूप में प्रसिद्ध हैं।

25. **गोवद्धण = गोवर्धन नाम के आचार्य—**

सुप्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ-श्रुतावतार की गुर्वावली के अनुसार आचार्य गोवर्धन, तीर्थंकर-महावीर के बाद चतुर्थ श्रुतकेवली के रूप में प्रसिद्ध हुए। इनका समय ई० पू० 413 से ई० पू० 394 तक माना गया है।

26. **चंदगुहा = चन्द्रगुफा**

गिरिनगर (गिरनार) में स्थित वह चन्द्रगुफा, जिसमें बैठकर आचाराङ्ग के पूर्ण ज्ञाता आचार्य धरसेन तपस्या करते थे। इसी गुफा में बैठ कर इन्होंने महिमानगरी में सम्पन्न होने वाले मुनि सम्मेलन को पत्र लिखकर उनसे सुयोग्य साधक शिष्यों को अध्ययनार्थ भेजने हेतु अनुरोध किया था।

27. **चउरम बुद्धि-सम्पण्ण**—चार प्रकार के निर्मल ज्ञान के धारी

28. **चरणानुयोग**—वह साहित्य, जिसमें चरित्र अध्यात्म आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

29. **चाउव्वेय = चतुर्वेद**—चार प्रकार के वेद—(1) ऋग्वेद, (2) यजुर्वेद (3) अथर्ववेद एवं (4) सामवेद,

30. **चोद्दसपुव्व = चतुर्दश पूर्व-साहित्य—**

जैन इतिहासकारों के अनुसार भ० महावीर के पहले का साहित्य पूर्व-साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। उसके विषय का वर्गीकरण 14 प्रकार से किया गया है जो निम्न प्रकार है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(1) उत्पाद पूर्व (2) अग्रायणीय (3) वीर्यानुवाद (4) अस्ति-नास्तिप्रवाद (5) ज्ञानप्रवाद (6) सत्यप्रवाद (7) आत्मप्रवाद (8) कर्मप्रवाद (9) प्रत्याख्याननामधेय (10) विद्यानुवाद (11) कल्याण-नामधेय (12) प्राणावाय (13) क्रियाविशाल एवं (14) लोक-बिन्दुसार।

31. **छट्ठोववास = षष्ठोपवास**

32. **जंबूसामि = जम्बू स्वामी—**

श्रुतावतार नामक ग्रन्थ के अनुसार जम्बू स्वामी तीर्थंकर महावीर के बाद तीसरे श्रुतकेवली के रूप में प्रसिद्ध हुए। इनका समय ई० पू० 503 से ई० पू० 465 तक माना गया है।

इनके पिता का नाम सेठ अर्हद्दास था। उन्होंने इनको गृहस्थी में बाँधना चाहा, किन्तु उनका मन अध्यात्म में लगता था। इस कारण उन्होंने जैन दीक्षा ले ली तथा घोर तपस्या कर मथुरा (उत्तर प्रदेश) से निर्वाण को प्राप्त हुए।

33. **जयपालो = जयपाल आचार्य—**

श्रुतावतार के अनुसार आचार्य जयपाल 11 अंगधारी आचार्यों में दूसरे आचार्य थे। इनका दूसरा नाम यशपाल अथवा जसपाल भी मिलता है। इनका समय ई० पू० 164 से 144 तक मिलता है।

34. **जयाइरियो = जयाचार्य—**

श्रुतावतार नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ के अनुसार ये श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के बाद चतुर्थ 11 अंग एवं 14 पूर्व-साहित्य के ज्ञाता आचार्य थे। इनका समय ई० पू० 319 से ई० पू० 298 माना गया है।

उक्त आचार्य के बाद सन् 1323 तक जयसेन नामके 7 आचार्य और हुए हैं। नाम-साम्य की दृष्टि से विशिष्ट अध्ययन के क्रम में उनका सावधानी पूर्वक करना आवश्यक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

35. **जसबाहु = यशोबाहु आचार्य—**

11 अंगधारी आचार्य। इनका समय ई० पू० 164 से 144 तक माना गया है।

36. **जसभद्दो = यशोभद्र आचार्य—**

श्रुतावतार की पट्टावली के अनुसार आचार्य यशोभद्र भगवान् महावीर के बाद मूल-गुरु परम्परा में 9 अंगधारी (तथा अन्य मान्यतानुसार केवल आचारांगधारी) आचार्य थे। इनका दूसरा नाम अभय अथवा भद्र भी मिलता है। इनका समय है—ई० पू० 53 से ई० पू० 35 तक।

37. **जिणवालिय = जिनपालित नामका राजा—**

जिनपालित ये वनवास (कर्नाटक) देश के राजा थे तथा रिश्ते-दारी में आचार्य पुष्पदन्त के मामा थे। आचार्य पुष्पदन्त के उपदेश से उन्होंने राज्यपाट का त्यागकर इन्हीं से जैन-दीक्षा ग्रहण कर ली थी। उनका काल सन् 87 ई० निर्धारित किया गया है।

आचार्य पुष्पदन्त द्वारा लिखित षट्खण्डागम के प्रथम 20 सूत्र लेकर यही जिनपालित द्रमिल देश में विहार कर रहे आचार्य भूत-बलि के पास पहुँचे थे।

38. **णंदिमित्त = नन्दिमित्र नाम के आचार्य—**

श्रुतावतार की पट्टावली के अनुसार ये द्वितीय श्रुतकेवली थे। इनका समय ई० पू 451 से 435 तक माना गया है।

39. **णक्खत्ताइरियो = नक्षत्राचार्य—**

इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार के अनुसार ये प्रथम 11 अंगधारी आचार्य थे। इनका समय ई० पू० 182 से 164 तक माना गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

40. णागाइदियो = नागाचार्य—

शौरसेनी प्राकृतागम के क्षेत्र में नागाचार्य (अथवा आचार्य नागहस्ती) का स्थान आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबली के समान माना गया है। क्योंकि नागहस्ती ने भी आचार्य गुणधर द्वारा परम्परा-प्राप्त ज्ञान को "कसायपाहुडसूत्र" के रूप में ग्रथित किया था। ये नागहस्ती आर्यमंक्षु के शिष्य तथा आचार्य यतिवृषभ के गुरु थे। इनका समय सन् 470 ई० से 560 ई० माना गया है।

41. तिक्खुत्ता = तीन बार

42. दक्खिणावह आइरियाणं = दक्षिणापथ के आचार्यों के लिए

43. दव्वपमाणाणुगम = द्रव्यप्रमाणानुगम-साहित्य

44. दव्व-सुद · द्रव्यश्रुत

45. दुस्सुदि = दुश्रुति

द्रव्यानुयोग—वह साहित्य, जिसमें षड्द्रव्य, पाँच अस्तिकाय आदि का वर्णन रहता है।

46. द्रमिल देश—

दक्षिण भारत में स्थित वह प्रदेश, जो वर्तमानकालीन मद्रास से सेरिंगपट्टणम् और कामोरिन तक फैला हुआ था। उस समय उसकी राजधानी कांचीपुरी थी। आचार्य भूतबलि अंकलेश्वर से अपने चातुर्मास के बाद यहाँ पधारे थे।

47. धम्मसेण = धर्मसेन आचार्य—

श्रुतावतार के अनुसार आचार्य धर्मसेन श्रुतकेवली भद्रबाहु (प्रथम) के बाद 11 अंगों के ज्ञाता थे। इनका समय ई० पू० 298 से ई० पू० 182 तक माना गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

48. धरसेणाइरियं = धरसेन आचार्य—

वर्धमान महावीर की मूल परम्परा में एक अंगधारी महान् आचार्य। गिरिनगर स्थित चन्द्रगुफा इनकी तपस्या, आत्म-चिन्तन एवं आगम-चिन्तन का विशेष स्थल था। इन्होंने आगम-परम्परा के लुप्त होने की चिन्ता से महिमानगरी में सम्पन्न होने वाले मुनि-सम्मेलन को एक पत्र भेजकर अनुरोध किया कि कुछ सुबुद्ध, सुयोग्य एवं चरित्रवान् शिष्य उनके पास शीघ्र ही भेजें, जिससे कि वे अपना ज्ञान एवं अनुभव उन्हें प्रदान कर सकें।

49. धरसेन—

उन्हें स्मरण करते हुए आचार्य वीरसेन ने स्वयं लिखा है :—

पसिअउ मह धरसेणो पर जाइ गओरदाण वर सीहो।
सिद्धंतामियसायर तरंग संधाय धोय मणो ॥ (4)

अर्थात् परवादी रूपी हाथियों को मद की आकांक्षा करने वाले श्रेष्ठ सिंह के समान (अर्थात् जिस प्रकार श्रेष्ठ सिंह के सम्मुख मदोन्मत्त हाथी भी नहीं ठहर सकता) तथा सिद्धान्त-शास्त्र के गम्भीर अवगाहन से, जिन्होंने विवेक को प्राप्त कर लिया है, ऐसे धरसेन स्वामी मुझ पर कृपालु रहें।

50. धवला = षट्खण्डागम पर लिखित टीका

आचार्य भूतबलि-पुष्पदन्त (सन् 66 से 156 ई० के मध्य) द्वारा लिखित "षट्खण्डागम" नामक शौरसेनी प्राकृत के आगम के प्रथम 5 खण्डों पर 72 हजार श्लोक प्रमाण लिखित एक विस्तृत टीका का नाम 'धवला' है, जिसे आचार्य वीरसेन स्वामी ने सन् 817 ई० में लिखकर पूर्ण किया था।

डॉ० हीरालाल जैन ने इस गुफा की पहिचान जूनागढ़ (गुजरात) की वर्त्तमानकालीन "बाबा प्यारा की गुफा" से की है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके अनुसार इस गुफा में जिस साधु का सल्लेखनामरण सम्बन्धी लेख मिलता है, वह आचार्य धरसेन से सम्बन्धित है।

51. **धिदिसेण** = धृतिषेण आचार्य—

श्रुतावतार नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ में उल्लिखित पट्टावली के अनुसार आचार्य धृतिषेण आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) के बाद सातवें 11 अंगों एवं 10 पूर्व साहित्य के अधिकारी ज्ञाता थे। इनका समय ई० पू० 263 से ई० पू० 245 तक माना जाता है।

52. **धुवसेणो** = ध्रुवसेन आचार्य—

श्रुतावतार की पट्टावली के अनुसार ये आचार्य ध्रुवसेन तीर्थंकर महावीर की परम्परा में चतुर्थ क्रम में आने वाले 11 अंगधारी आचार्य थे। इनका दूसरा नाम द्रुमसेन भी मिलता है। इनका सयय ई० पू० 105 से ई० पू० 91 तक माना गया है।

53. **प्रथमानुयोग**—वह साहित्य जिसमें पौराणिक एवं धार्मिक कथा-कहानियाँ उपलब्ध हों।

54. **पांडु सामी** = पाण्डुस्वामी अथवा आचार्य पाण्डव—

श्रुतावतार की पट्टावली के अनुसार भ० महावीर के बाद मूल गुरू परम्परा में तीसरे स्थान पर प्रतिष्ठित ये 11 अंगों के ज्ञाता आचार्य थे। इनका समय ई० पू० 144 से ई० पू० 105 तक माना गया है।

55. **परिवाडि** = परिपाटी = पूर्वक्रमागत परम्परा से

56. **पोट्ठिलो** = प्रोष्ठिल

"श्रुतावतार" के अनुसार ये आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) के बाद 11 अंग तथा 10 पूर्वधारी आचार्य थे। इनका समय ई० पू० 335 से ई० पू 336 माना गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

57. **बह्मणेण गोदम गोत्तेण** = गौतम गोत्र वाला ब्राह्मण इन्द्रभूति—

तीर्थंकर महावीर के प्रधान शिष्य, जो गौतम गणधर (प्रधान शिष्य) के रूप में प्रसिद्ध हुए। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनका पूर्व नाम इन्द्रभूति था और वेद-वेदांगों में पारङ्गत विद्वान् थे। इनका मूल निवास राजगृही के आसपास गोवर्धन-ग्राम अथवा पोलाशपुर नगर में था। वहाँ पर इनके द्वारा स्थापित विद्यापीठ में 500 विद्वान्-शिष्य अध्ययन किया करते थे। जिस समय तीर्थंकर महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और उनका समवशरण राजगृही में हुआ, उसी समय उनसे प्रभावित होकर वे उनके अनुयायी एवं प्रधान-शिष्य बन गये। उन्होंने ही महावीर के प्रवचनों की व्याख्या की और उन्हें जनसाधारण के योग्य बनाया। आज जितना भी जैन साहित्य उपलब्ध है, उसका मूल-स्रोत गौतम गणधर को ही माना जाता है।

58. **बारहङ्गा** = द्वादशविध अङ्ग = बारह प्रकार का अङ्ग-साहित्य, जो निम्न प्रकार है :—

(1) आचारांग (2) सूत्रकृतांग (3) स्थानांग (4) समवायांग (5) व्याख्या-प्रज्ञप्ति (6) ज्ञातृधर्मकथांग (7) उपासकदशांग (8) अन्तःकृददशांग (9) अनुत्तरौपपातिक दशांग (10) प्रश्न व्याकरण (11) विपाक सूत्र एवं (12) दृष्टिवाद।

इनमें से दृष्टिवादांग पाँच प्रकार का है :—(1) परिकर्म (2) सूत्र (3) प्रथमानुयोग (4) पूर्वगत एवं (5) चूलिका।

59. **बुद्धिल्ल** = इस नाम के एक आचार्य—

श्रुतावतार की पट्टावली के अनुसार इनका नाम बुद्धिल्ल था। किन्तु कुछ स्थानों पर इनका नाम बुद्धिलिङ्ग भी मिलता है। ये आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) के बाद 9वें 11 अङ्ग एवं 10 पूर्वों के ज्ञाता थे। इनका समय ई० पू० 232 से ई० पू० 212 माना गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

60. **भडारय** = भट्टारक-यति,

61. **भद्दबाहु** = भद्रबाहु नाम के आचार्य—

श्रुतावतार के अनुसार ये अन्तिम श्रुतकेवली थे। मगध में जब 12 वर्ष का भीषण दुष्काल पड़ा उस समय वे 12000 साधु संघ के साथ दक्षिण भारत की ओर चले गये थे। उसी समय मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) ने भी अपना समस्त राज्यपाट अपने पुत्र को सौंपकर उनसे जैन-दीक्षा ले ली थी तथा वह भी उनके साथ दक्षिण भारत चला गया था। कर्नाटक के श्रवणवेलगोल में उन दोनों की समाधि वनी हुई है। इनका समय ई० पू० 394 से ई० पू० 365 तक माना गया है।

62. **भावसुय** = भावश्रुत

63. **भूतबलि**--

वीरसेन स्वामी ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा :—

पणमह कय भूयबलिं भूयबलि केस-वास परिभूय बलिं।
विणिहय वम्मह णसरं वड्ढाविय विमल णाण वम्मह पसरं ॥ (6)

अर्थात् जो भूत अर्थात् प्राणिमात्र द्वारा अथवा जो भूत जाति के व्यन्तर देवों द्वारा पूजित हैं, जिन्होंने कामदेव के प्रचार को नष्ट कर दिया है, जिन्होंने अपने निर्मल ज्ञान द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत के प्रसार को वढ़ा लिया है, ऐसे भूतबलि आचार्य को नमस्कार करता हूँ।

64. **भूद** = भूत व्यन्तर जाति के देव

65. **महाकम्म पयडि पाहुड़**—महाकर्म प्रकृति प्राभृत नामक सिद्धान्त ग्रन्थ।

66. **महिमा (नगरी)**—

आन्ध्र प्रदेश में बेणाक नदी के किनारे स्थित प्राचीन काल का एक प्रमुख विद्या-केन्द्र। वर्तमान में इसकी पहिचान सतारा जिले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में स्थित महिमानगर नामक ग्राम से की गई है। प्राचीनकालीन भारतीय भूगोल के अनुसार उस समय सतारा जिले का वह भूखण्ड आन्ध्र प्रदेश में पड़ता था।

67. मूल तंतकत्ता = मूल ग्रन्थकर्ता—(वर्धमान महावीर)

68. लेहो = लेख अर्थात् पत्र

69. लोहज्ज = लोहार्य अथवा लोहाचार्य

इनका समय आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) के बाद माना गया है। ये आठ अङ्गों के धारी थे। इनके समय का सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो पाया है। कुछ विद्वान् इनका समय सन् 157 ई० मानते हैं और कुछ विद्वान् इनका समय ई० पू० 12 से सन् 38 तथा अन्य कुछ विद्वान् इनका काल सन् 220 से 231 तक का मानते हैं।

70. वनवास-विसय—

उत्तरी कर्नाटक का प्राच्यकालीन नाम, जो तुंगभद्रा एवं वरदा नदियों के बीच बसा हुआ था। वर्तमान में इसकी पहिचान वहाँ के वनवासि-ग्राम से की जाती है।

अंकुलेश्वर से अपने चातुर्मास के बाद आचार्य पुष्पदन्त इसी वनवास-देश में पधारे थे। जहाँ उनकी भेंट वहाँ के राजा जिनपालित से हुई थी। उनसे प्रभावित होकर उसने उनसे जैन दीक्षा ले ली तथा उनके पास उसने अध्ययन किया।

71. वरिसाकाल = वर्षाकाल—

वर्षा ऋतु के चार माह में जैन साधु एवं साध्वी गमनागमन नहीं करते। एक ही स्थान पर रुक कर स्वहित एवं प्रवचनों द्वारा परहित करते हैं। इस क्रिया को वर्षाकाल या चातुर्मास कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

72. विजयाइरियो = विजयाचार्य—

श्रुतावतार के अनुसार आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) के बाद ये 8वें 11 अंग तथा 10 पूर्वों के ज्ञाता आचार्य थे। इनका समय ई० पू० 245 से ई० पू० 232 माना गया है।

73. विज्जादाण = विद्यादान

74. विण्हू = विष्णु नाम के आचार्य—

इनका पूरा नाम है विष्णुनन्दि आचार्य, जो पाँचवें श्रुतकेवली के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका काल ई० पू० 465 से ई० पू० 451 तक माना जाता है। ये आचार्य नन्दि के नाम से भी प्रसिद्ध है।

75. विसाहाइरियो = विशाखाचार्य

श्रुतावतार नामक ग्रन्थ के अनुसार ये अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) के बाद 11 अंग एवं 14 पूर्वधारी आचार्य थे। मगध में जब बारह वर्षों का भीषण दुष्काल पड़ा, उस समय ये आचार्य भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत गए थे। भद्रबाहु की तो वहाँ समाधि हो गई, पर विशाखाचार्य दुष्काल समाप्त होने पर उत्तर भारत लौट आए थे।

इनका समय ई० पू० 365 से ई० पू० 355 माना गया है।

76. वेण्णायड = वेण्णातट

आन्ध्र प्रदेश स्थित वेण्णानदी के तट पर स्थित एक व्यापारिक नगर।

77. श्रुतदेवता—

षट्खण्डागम में इसकी परिभाषा देते हुए कहा गया है :—

बारहअंगंगिज्झा वियलिय—मल मूढ़ दंसणुत्तिलया।
विविह-वर-चरण-भूसा पसियउ सुयदेवया सुइरं ॥ (2)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् आचारांगादि 12 अंगों का समूह ही जिसका शरीर है, जो सभी प्रकार के मलों अर्थात् अतिचारों और 3 प्रकार के अन्ध विश्वासों (मूढ़ताओं) से रहित है, जो सम्यग्दर्शन रूप प्रशस्त-तिलक से सुशोभित हैं, जो निर्मल चरित्र रूपी आभूषणों से अलंकृत हैं, वही भगवती श्रुतदेवता हमारे ऊपर दीर्घकाल तक कृपा करती रहें।

78. **सत्तविहलद्धि** = सात प्रकार की लब्धियाँ

79. **सत्प्ररूपणा**—

इसमें दो पद हैं—सत् अर्थात् तीनों लोकों में जीवों का अस्तित्व कहाँ-कहाँ और किस प्रकार है, इसकी "प्ररूपणा" अर्थात् व्याख्या करना ही सत्प्ररूपणा है।

80. **सयलसुद** = सकल श्रुत

81. **सिद्धत्थ थेर** = सिद्धार्थ स्थविर—

श्रुतावतार की पट्टावली के अनुसार आचार्य सिद्धार्थ अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) के बाद छठवें 11 अंग तथा 10 पूर्वों के ज्ञाता आचार्य थे। इनका समय ई० पू० 280 से ई० पू० 263 माना गया है।

82. **सुभद्दो** = सुभद्र आचार्य—

श्रुतावतार की पट्टावली के अनुसार आचार्य सुभद्र भ० महावीर के पश्चात् मूल-गुरु-परम्परा में दश अंगों के ज्ञाता थे। अन्य कुछ विद्वानों की मान्यतानुसार ये केवल आचारांग के ज्ञाता थे। इनका समय ई० पू० 59 से ई० पू० 53 तक माना गया है।

83. **सेलघण आदि**—इसमें दस प्रकार के श्रोताओं का वर्णन किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

84. सोरट्ठ-विसय—

सौराष्ट्र देश जो पहले कच्छ काठियावाड़ में समुद्री किनारे पर अवस्थित था। वर्त्तमान में वह गुजरात में मिला दिया गया है।

———

4517
2-8-59

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० राजाराम जैन द्वारा लिखित/सम्पादित ग्रन्थ

१. रइधू-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (पुरस्कृत)
२. रइधू ग्रन्थावली-प्रथम खण्ड (पुरस्कृत)
३. रइधू ग्रन्थावली-द्वितीय खण्ड
४. वड्ढमाणचरिउ (विबुध श्रीधर) (पुरस्कृत)
५. आचार्य भद्रबाहु चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक एवं कल्कि वर्णन
६. रइधू ग्रन्थावली तृतीय खण्ड (प्रकाश्यमान)
७. पासणाहचरिउ (विबुध श्रीधर) (प्रकाश्यमान)
८. प्राच्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान के महामेरु : आचार्य कुन्दकुन्द
९. अतीत के पृष्ठों से
१०. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर
११. हिन्दी के प्रसिद्ध लोककवि (मध्यकालीन)
१२. राजा भोज और कालिदास की कहानियाँ
१३. सेतुबन्ध महाकाव्यम् (प्रवर सेन) प्रथम दो आश्वास
१४. लीलावई कहा (कोऊहल कृत) प्रथम ३०० गाथाएँ
१५. कुमारपालचरितम् (आचार्य हेमचन्द्र) प्रथम २ सर्ग
१६. आरामसोहाकहा (संघतिलकगणि)
१७. भविष्यदत्त काव्यम (महेश्वर सूरि)
१८. अगडदत्तचरियं (देवेन्द्र गणि)
१९. कहाणय अट्ठगं (प्राकृत की प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ)
२०. सरल प्राकृत व्याकरण
२१. पाइय गज्ज संगहो (प्राकृत गद्य संग्रह)
२२. षट्खण्डागम लेखन-कथा
२३. जैन नाटक संग्रह
२४. बिहार की जैन तीर्थभूमियाँ
२५. अपभ्रंश-साहित्य का बृहत् इतिहास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi